पतझड़

प्रणेता

श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

प्रकाशक

श्रीज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'
भारतेन्दु कार्यालय, इलाहाबाद

१।)

पहली बार, एक हज़ार

मुद्रक

श्री शिव प्रेस, हिवेट रोड, इलाहाबाद

सूची

स्मृति-चिन्ह

एक जो खिला था फूल वह मुरझा गया ।
हाय ! क्यों वसन्त में ही पतझड़ आ गया ?

एक झोंका

(क)

उदास दक्खिनी वायु का एक झोंका आया, पीले पड़े हुए निर्जीव पत्ते, वृक्षों की ममता छोड़कर धरित्री पर झर पड़े। वृक्षों की हरी-भरी गिरिस्ती क्षण भर में नष्ट हो गयी। धरित्री की सूनी गोद, सूखे पत्तों से भर गयी।

उस दिन मैं उसी वृक्ष के नीचे खड़ा था। यह करुण दृश्य देख न सका। काँप कर मैंने आँखें मीच लीं। मर्मर शब्द से पत्ते किसी अव्यक्त भाषा में कराह उठे। मैं स्तब्ध हो गया, चञ्चल हो गया, विह्वल हो गया। हे भगवान ! मैंने एक ऊँची साँस ली।

फिर, वायु का एक दूसरा झोंका आया। झरे हुए तरुपत्रों में कोलाहल मच गया। सहायहीन, विवश पत्ते उड़-उड़ कर इधर-उधर बिखर गए। किन्तु, उस दिन मैं कहानी लेखक नहीं था।

(ख)

प्रकृति ने हृदय में कोमलता दी थी, सहानुभूति दी थी, सरलता दी थी। किन्तु, संसार के कोलाहल ने, दुनियाँ के

सङ्घर्षण ने हृदय को कठोर बनाया, ईर्ष्यालु बनाया, कुटिल बनाया। पहले दुख देख नहीं सकता था, सह नहीं सकता था, सुन भी नही सकता था। आज तो सब देखता-सुनता हूँ, भला-बुरा जो कुछ आगे आता है, पत्थर होकर सह भी लेता हूँ। तब में और अब में कितना अन्तर है?

विश्व की नीरव निर्जनता में भी जो एक कोलाहल है, सृष्टि की अखण्ड शान्ति में भी जो एक सङ्घर्षण है, द्वन्द्व है, उसी ने मुझे कहानी-लेखक बना दिया है। कौन जानता था, रात भर सुख की नींद सो लेने के बाद, एक दिन जब उषःकाल की सुनहली सूर्य किरणें मेरा मस्तक चूमकर मुझे जगावेंगी—मैं कहानी-लेखक बनकर उठूँगा?

(ग)

बात आज से दस बरस पहले की है, लेकिन, आज भी वह मुझे रात के सपने से अधिक दूर की चीज़ नहीं मालूम होती। उस समय मैं केवल दस बरस का एक अबोध शिशु था। एक दिन, एक छोटी कहानी लिखकर मैंने अपने बाबू जी को दिखलाई। देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसकी बड़ी तारीफ़ की। उस समय वे हिन्दी के एक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक थे। उसी में उन्होंने वह कहानी छाप भी दी। फिर तो मैं कहानियाँ लिखता रहा, वे हिन्दी की अच्छी-बुरी पत्र-पत्रिकाओं में छपती भी रहीं और अन्त में,

एक दिन मैंने आश्चर्य से देखा, मैं अपने छोटे से सीमित संसार का पतझड़ बना बैठा हूँ ।

पतझड़ में क्या है, यह मैं आपको क्या बताऊँ ? पुस्तक आपके हाथ में है और कुछ ही समय में आप उसके मन-प्राण से परिचित हो ही जायँगे । फिर, मैं अपनी ओर से क्या कहूँ ? हाँ, इतना कहता हूँ कि इसमें कोई नयी बात नहीं है । वही सारा पुराना पतझड़ा है, जो चिरकाल से होता आया है, जो आज भी संसार में समान रूप से हो रहा है और जो अनन्तकाल तक होता ही चला जायगा । पुण्य और पाप, सुख और दुःख, भाव और अभाव, हास्य और क्रन्दन, यह क्या दुनियाँ के लिए नयी चीज़ें हैं ?

(घ)

आज तो मैं स्वयं ही एक कहानी हो रहा हूँ । लेकिन, ऐसी कहानी हूँ, जिसे न कोई पढ़ सकता है, न समझ सकता है, न ओर छोर ही पा सकता है । दुनियाँ को इसकी जरूरत ही क्या है ? क्योंकि—

किसको है अवकाश, प्रलय का देखे यह शृङ्गार ?
किसको है अवकाश, हमारा सुन ले हाहाकार ?

ओझाबन्धु आश्रम, इलाहाबाद, मई ३०

पतझड़-प्रणेता
'प्रफुल्ल'

पतझड़

१

विदा

लालगंज से दक्खिन की ओर जो सड़क गयी है, उसे काटती हुई एक पतली और तेज़ धारवाली नदी बहती है। सड़क और नदी का जहाँ मिलान होता है, वहीं एक छोटा-सा पुल है। लालगंज की घनी बस्ती, पुल पर से, साफ़ दीख पड़ती है।

बेर डूब रही थी। सड़क पर—दूर दूर तक फैले हुए—शाल के लम्बे-लम्बे वृक्ष, सन्ध्याकी धूसर-शोभा में अपने प्राणों की अनन्त उदासी ढाल रहे थे। वसन्त सिर झुकाये हुए—चुपचाप—इसी सड़क पर चला जा रहा था।

पुलके पास पहुँच कर वसन्त रुक गया। सड़क से उतर कर—नदी के किनारे—एक पत्थर पर वह बैठ गया। दोनों पैर जल में डाल दिये। फिर, उदास मन से, नदी के उसपार के अन्धकार में दृष्टि गड़ाये, न जाने किस चिन्ता में वह डूब गया।

डूबते हुए सूर्य की किरनों का सुनहला प्रतिविम्ब नदी के वक्षःस्थल पर—उद्दण्ड अपराधी की तरह—नाच रहा था। लम्बे शाल तरुओंकी काली छाया, नदी के जल में—बेहोश शराबी की भाँति—गिर पड़ रही थी। आकाश के नीले अंचलमें, विभावरी की आँखों के मोती, जहाँ-तहाँ, बिखर गये थे। खिले हुए सुमनों के सौरभ से लदी हुई, वसन्ती वायु, डोल रही थी। मगर, वसन्त ने इन सब की ओर आँख उठाकर ताका भी नहीं। वह किसी गहरी चिन्ता में डूबा हुआ था। उसके मुँह पर अमर उदासी थी, हृदय में अशान्तिका अथाह समुद्र हिलोरें मार रहा था। मालूम होता था, मानो, उसके हृदय का सारा आनन्द, सारा सुख—दिन के सपने की तरह—क्षणभर में कहीं खो गया है। मानो, उसका निराश और अनन्त हाहाकार से भरा हुआ हृदय, सारे संसार में खोज कर भी उसे नहीं पा रहा है; और, मानो, इसी कारण उसका तृषित हृदय अशान्त और अधीर और उन्मत्त हो उठा है।

धीरे धीरे, सूर्य की अन्तिम किरनों ने धरित्री से विदा माँगी। धीरे-ही-धीरे, अष्टमी का उज्वल चन्द्रमा आकाश में खिल उठा। कोलाहलमय जगत् में शान्ति की एक स्थिर-गम्भीरता फैल गयी। गाँव के समीपवाले घाट से—नहाने और पानी भरने वाली—स्त्रियों की महफ़िल एक एक करके उठ गयी।

दूरसे, गाँव के कुत्तों के रोने की क्षीण ध्वनि और झिल्ली की झनझनाहट सुन पड़ने लगी; पर, वसन्त को इसकी कोई खबर न थी। पत्थर की मूर्ति की तरह, वह, नदी के जल में पैर लट-काये, बैठा रहा।

कुछ दूर से, डाँड़ों की छप-छप आवाज़ आरही थी। वसन्त का ध्यान उधर न था। आवाज़ क्रमशः समीप आती गयी। किसी सुरीले गले से निकले हुए गीत का मुलायम स्वर भी सुन पड़ा। गीत की एक कड़ी वसन्त के कानों में भी झन-झना उठी—

"कौना कऽ पोखरिया में इलमा-झिलमा बसई
कि कौन रे पापी डालेस महाजाल।"

बिरहा के इस आलाप से वसन्त का हृदय कसक उठा। उसकी उचाट आँखें एकबारही पट्ट-से नाव पर जा-पड़ीं। नाव उसी की ओर आ रही थी। क्षणभर में किनारे आ-लगी।

नाव को किनारे लगाकर एक किशोरी बालिका फुर्ती से उसपर से कूद पड़ी। उसके एक हाथ में मछली मारने की बंसी थी; दूसरे में, मछलियों से भरी हुई कपड़ों की एक गठरी। नाव से उतरते ही वसन्त की ओर देखकर कौतूहल से उसने पूछा—"वसन्त भैया हो क्या? इतनी बेर तक यहाँ क्या कर रहे हो?" बालिका ने वसन्त की पीठ थपथपा दी।

उत्तर दिये बिना ही वसन्त पूछ बैठा—"कहाँ से इस वखत आ रही हो जोना? बड़ी देर करदी! अम्मा घबड़ा न रही होंगी?"

ज्योत्स्ना—शायद—बालिका का नाम रहा होगा; लोग, जोना-जोना कहकर पुकारा करते थे। गरीब की बेटी थी। बाप बचपन में ही मर गया था, घर में केवल बुढ़िया माँ थी। माँ के हृदय का छलकता हुआ आदर-दुलार पाकर, वह बढ़ी थी। स्वभाव में स्वतन्त्रता थी,उच्छृङ्खलता भी। लोगों से बहुत मिलती जुलती न थी। केवल वसन्त ही उसका अकेला साथी था।

वसन्त की बात सुन कर, वह कुछ गंभीर हुई। बोली—"माँ की बात सोचकर ही तो मैं अपना शिकार छोड़कर दौड़ी आ रही हूँ। तुम जानते नहीं हो न वसन्त, आज बड़ी दिल्लगी हुई। दोपहर से ही बंसी लेकर मैं शिकार करने निकली थी। साँझ हो गयी, मगर मछली एक भी न फँसी। मैंने भी प्रतिज्ञा करली कि बिना शिकार किये, घर लौटूँगी ही नहीं। नाव लेकर उधर चली गई—वहाँ, उस ओर—जिधर वह नाला नदी में आ मिला है। वहाँ पर खूब मछलियाँ थीं, बेतादाद, बेशुमार!! फँसीं भी खूब। एक भी वार खाली न गया। हटनेका जो ही न होता था; मगर, माँ की बात सोचकर ही मैं सब छोड़छाड़कर

दौड़ी आयी हूँ। बहुत बड़ी-बड़ी मछलियाँ फँसी हैं वसन्त! देखो!"

एक साँस में इतनी बातें कहकर जोनाने एकमूठी बड़ी-बड़ी मछलियाँ गठरी से निकाल कर वसन्त की देह पर डाल दीं।

सतृष्ण नेत्रों से एकबार बालिका की ओर देख कर वसन्त इधर उधर फैली हुई मछलियों को बीन-बीनकर जोनाकी गठरी में भरने लगा। मन ही मन उसने सोचा—यह लड़की कितना सुखी है! मालूम पड़ता है, मानो, संसार के सुख-दुख, दैन्य-अभाव से इसका कोई सम्पर्क ही नहीं है। इस जीवन की कल्पना भी उसके लिए कितनी वेदना से भरी हुई है!

जोना ने देखा, वसन्त ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया, उसकी बड़ी-बड़ी मछलियों की प्रशंसा भी नहीं की। शून्य की ओर ताकता हुआ—उदास मन से—वह कुछ सोचता रहा। जोना वसन्त के पास चली आयी। वसन्त का कन्धा पकड़ कर उसने हिला दिया। बोली—"वसन्त!"

वसन्त, जैसे, सोते-से जाग उठा। चौंक कर बोला—"क्या कहती हो जोना?"

जोना को मालूम हुआ, वसन्त की आवाज़ भारी है। शायद वह रो रहा है। विस्मय से उसने पूछा—"यह क्या वसन्त? तुम रो रहे हो?!"

वसन्त ने कुछ जबाब न दिया।

"क्या बात है वसन्त ? मुझसे न कहोगे ? अच्छा लो, मैं जाती हूँ।" जोना की आवाज़ अभिमान से भारी हो रही थी। जाने के लिये वह तैयार हो गयी।

"ठहरो जोना !" विनय-कातर वाणी में वसन्त ने पुकारा—"आज तुमसे अन्तिम विदा माँगने आया हूँ। ईश्वर के लिये, मुझसे नाराज़ होकर न जाओ।"

"अन्तिम विदा ?"—जोना ठिठक गयी। बोली—"इसके क्या माने वसन्त ? विदा कैसी ??"

"कल सवेरा होने के पहले ही"—वसन्त ने कहा—"मैं लालगंज से सदा के लिये विदाई माँग लूँगा। ओफ़ ! अब सहा नहीं जाता !"

"क्या हुआ वसन्त ? फिर तुमसे कुछ कहा सुना है क्या चाची ने ?"

"कहा सुना है ?" दुख की अधिकता से वसन्त की आवाज़ काँप रही थी। उसने कहा—"यदि वह कहने सुनने तक ही रहता जोना, तो, उसे मैं कड़वी दवा के समान गले से उतार जाता, तुम लोगों को छोड़कर जाने की बात भी न सोचता। पर, अब तो बर्दाश्त नहीं होता भाई !"

वसन्त ने कुर्ता हटाकर अपनी पीठ जोना को दिखलायी! हाथ से सहलाकर जोनाने देखा, उसकी पीठपर मार के निशान उखड़े हुए हैं। कई जगह फूट भी गया है। उसके कुर्ते में जगह-जगह खून के दाग पड़े हुए हैं।

जोना की आँखें भर आयीं। वसन्त के प्रति तीव्र सहानुभूति से उसका हृदय भर गया। धीरे से उसने पूछा—"तो तुम कहाँ जाओगे वसन्त ?"

"जानता नहीं हूँ। जहाँ प्रारब्ध ले जायगा, वहीं जाऊँगा।"

"फिर कब आओगे ?"

"यह भी नहीं जानता। कह नहीं सकता कि जीवन में फिर कभी आ सकूँगा या नहीं; फिर तुमसे भेंट हो सकेगी या नहीं; आओ, आज तुमसे अन्तिम विदा ले लूं जोना! फिर क्या होगा, कौन कह सकता है ?"

पन्द्रह वर्षके वसन्त के हृदय में कल्पनाओं का तूफ़ान उठ रहा था। जीवन-व्यापी वेदना की अनेक तीखी और कठोर स्मृतियाँ रह-रहकर उसके हृदय पर आघात कर रही थीं। वह पागल-सा हो रहा था।

वसन्त की बात सोचती हुई जोना गंभीर हो गयी। क्या सचमुच ही वसन्त से यह आखिरी भेंट है ? फिर जीवन में

उन दोनों का मिलन कभी न हो सकेगा? यह कल्पना कितनी कठोर और दुःखद है!!

"अब चलूँ जोना"—वसन्त ने कहा—"तुम भी जाओ। देर हो रही है।" उसकी वाणी में गभीर निराशा थी, हृदय में अशान्ति का बवण्डर तूफ़ान मचा रहा था।

"जाओ वसन्त!"—जोना ने सिर नीचा करके आँचल से आँख पोंछ ली। बोली—"ऐसी हालत में तुमसे रहने के लिए कैसे कहूँ? पर, सुख पाकर हम लोगों को भूल न जाना।"

"सुख पाऊँगा?" वसन्त ने दुखी होकर कहा—"उसकी तो मैं कल्पना भी इस जीवन के लिये नहीं कर सकता जोना! यह जीवन ही वेदना, अभाव और क्रन्दन का अमर इतिहास है। पीड़ा का भार लिये हुए ही, अब—किसी दिन—विदा हो जाने की अभिलाषा शेष रह गयी है। और, तुम्हें भूल जाऊँगा? आह! यदि वैसा मैं कर सकता! किन्तु, जाने दो। चलो।"

दोनों, गाँव की ओर चल पड़े। उस समय न जाने किस अभिप्राय से—नीले आसमान में—चन्द्रमा अट्टहास कर रहे थे।

थोड़ी दूर तक जोना के साथ जाकर—वसन्त—शाल-वृक्षों की घनी छाया में अदृश्य हो गया।

——:०:——

२

पूर्व-कथा

सारा संसार सोया हुआ था; मगर, वसन्त की आँखों में नींद न थी। उसके हृदय में एक आग थी, जो—रह रह कर—सुलग उठती थी। एक बेकली थी, जो—छनभर भी—उसे चैन न लेने देती थी। वह चिन्तित था, उदास था, व्यग्र था। उसके हृदय में अशान्ति की ज्वालामुखी सौ-सौ धारों में फूट उठी थी। बिछौने पर वह छटपटा रहा था।

वसन्त ने खिड़की से सिर निकाल कर बाहर देखा। सघन अन्धकार की चादर ओढ़कर धरती स्वप्न के जगत् में विचरण कर रही थी। आसमान में टँके हुए सितारे झिलमिला रहे थे। मौत का-सा भयावना सन्नाटा चारोंओर छाया हुआ था। रात साँय-साँय कर रही थी। हाय! जीवन की ये घड़ियाँ वसन्त के लिये कैसी विभीषिकामयी थीं!!

अतीत जीवन के आठ-दस वर्षों की स्मृति उसके हृदय में जाग उठी थी। इन कई वर्षों की प्रत्येक घटनाएँ—बाइस्कोप

की तस्वीर की तरह—उसकी आँखों के सामने नाचने लगीं। वह अधीर हो उठा। दोनों हाथों से कलेजा दबाकर भीतर ही भीतर हिचक-हिचक कर रोने लगा। आज खुलकर रोने की भी उसे आज़ादी नहीं है। हाँ, इतना ही परतंत्र है वह।

भाग्य ने कभी उसका साथ दिया हो, ऐसी एक भी घटना उसे याद न आयी। जन्म के कुछ ही दिनों बाद, जब, वह पितृ-हीन हो गया, तो, विजय के गर्व से प्रारब्ध अट्टहास कर उठा था। उसके साथ, प्रारब्ध का यह पहला ही विद्रोह था।

फिर, पाँच वर्ष की छोटी अवस्था में ही, जब, उसे अकेला छोड़कर, उसकी माँ भी सदा के लिए उससे विदा हो गयी, तो, जीवन और मृत्यु का रहस्य वह कुछ भी न समझ सका था। माँ की इस महायात्रा पर वह रोया नहीं, चिल्लाया भी नहीं। नाच-नाच कर तालियाँ पीटता हुआ वह कहता फिरा—"मैं भी जाऊँगा। अम्मा के साथ मैं भी जाऊँगा।" किन्तु, उसे छोड़, शव लेकर जब सब लोग चले गये, तो, वह चिल्लाकर रो पड़ा था। आज भी वह घटना उसे भूली नहीं है। वह स्मृति कितनी वेदनामयी, कितनी मर्मभेदिनी है! ओः!!

उसके बाद? उसके बाद—स्वप्न की तरह—दिन आये और उमङ्गों की तरह चले गये। वह जान भी न सका कि कब आये और कब चले गये। जीवन के दस वर्ष इसी तरह बीत गये।

किन्तु, ये दस वर्ष कितनी विपत्तियों और वेदनाओं और मानसिक कष्टों के संकलन थे !! इन दस वर्षों में एक दिन भी उसके अधरों पर प्रसन्नता की हँसी नहीं चमक उठी, एक बार भी सन्तोष की मुस्किराहट उसके मुँह पर क्रीड़ा नहीं कर गयी। अपने इस नन्हें-से जीवन में उसने सुख का मुँह कभी नहीं देखा था।

हाँ, उसके हृदय की मरुभूमि में, सुख और सन्तोष की, एक शीतल किन्तु पतली धारा भी बहती थी। वह, जोना थी। जोना की याद आते ही वसन्त की आँखें भर आयीं। स्नेह की पुतली वह बालिका—ओः!—कितनी भोली, कितनी सरला है !! मालूम होता है, मानो, संसार की सारी माया-ममता उसीने अपने हृदय के किसी निभृत-प्रान्त में छिपा रक्खी है।

जोना के साथ ही—वसन्त के हृदय में—दुख-सुख की अनेक मिश्रित-स्मृतियाँ जाग उठीं। जोना के लिए उसका हृदय हाहाकार करने लगा। न-जाने, फिर कब जोना से भेंट होगी ! कभी होगी भी या नहीं, यही कौन कह सकता है ?

आँखों में भरे हुए आँसू—वसन्त ने—पोंछ लिये। कितने ही दिन पहले की एक बात याद करके वह रो उठा। उस समय सात बरस से ज़्यादा का वह न रहा होगा। सावन का महीना था। आसमान में काले-काले बादल भरे हुए थे।

बगीचे में खुशनुमा हरियाली छायी हुई थी। मुहल्ले की कुछ लड़कियाँ और लड़के, नीम के एक वृक्ष पर हिंडोला डालकर—आनन्द से किलोलें करते हुए—झूल रहे थे। उनके हृदय में कितना उत्साह, कितना आनन्द और कितनी मस्ती थी !!

वसन्त उसी रास्ते-से बाज़ार जा रहा था। लड़कों को देखकर क्षणभर वह खड़ा हो गया। जोना ने उसे पुकार कर कहा—"वसन्त हो क्या ? आओ, तुम भी एक बार झूलते जाओ" !

वसन्त का हृदय--हिंडोले की तरह ही--आगा-पीछा करने लगा। उसकी इच्छा हुई कि एकबार हिंडोले पर चढ़कर दो पेंग वह भी मारता जाय, पर, चाची की चढ़ी-त्यौरियाँ जब उसे याद आयीं, तो, सहम गया। आगे बढ़ने के लिए उसके पैर न उठे। सिर झुकाकर वह चुपचाप खड़ा रह गया, मानो, अपनी इस असमर्थता, इस बेबसी पर, उसे कितनी ग्लानि, कितनी लज्जा मालूम पड़ रही हो !!

उसे चुप देखकर जोना से न रहा गया। वह हिंडोले से उतर आयी और वसन्त का हाथ पकड़ कर हिंडोले पर खींच ले गयी। जोना के स्नेह और ममता से भरे इस अनुरोध को

वह टाल न सका, यद्यपि इसके कारण होनेवाली दुर्गतियाँ उसकी नज़रों से ओझल न हो सकी थीं।

हिंडोले पर चढ़कर वह संसार भूल गया। तीर की तरह, इधर-उधर आते-जाते हुए, हिंडोले पर पैंग मारते और अनेक बालक-बालिकाओं के सुरमें सुर मिलाकर—"बादर बरसै, बिजुरी चमकै, रैन अँधेरी ना"—का राग अलापते हुए उसे अपने तन-बदन की सुध न रह गयी। सन्ध्या की वह उदासी, ज़मीन और पेड़ों की स्वाभाविक हरियाली, काले-सफ़ेद बादलों से ढँका हुआ नीला आसमान, उदास दक्खिनी हवा की सरसराहट—ओफ़!—जीवन की वे कुछ-घड़ियाँ कितनी सुखकर, कितनी सुन्दर और कितनी रँगीली थीं!!

लौटकर वसन्त जब घर पहुँचा, तो, दिया-बत्ती हो गयी थी। घर में उसे घुसते देखकर चाची गरज उठीं, बरस पड़ीं। तड़-से एक थप्पड़ उसके गाल पर मार दिया। तलमलाकर रह गया बेचारा।

इसके आगे वह न सोच सका। हृदय की असीम व्यथा पिघल कर—आँखों की राहसे—निकल पड़ी। अपनी सूनी आँखें, कोठरीके सघन अँधेरे में गड़ाये हुए, बड़ी देर तक, वह

रोता रहा। अतीत की यह पुनरावृत्ति कैसी भयानक, कैसी कठोर थी ?

खिड़की से सिर निकाल कर वसन्त ने आसमान की ओर देखा। चन्द्रमा का प्रकाश फीका पड़ गया था। पूरब की ओर एक चमकीला तारा अपने हृदय का सारा प्रकाश अपनी झलमलाहट में बिखरा रहा था। पृथ्वी पर एक हलकी प्रकाश-रेखा दौड़ गयी थी। मन्द-वायु के झोंके खा खाकर वृक्षों के पत्ते मर्मर-संगीत गा रहे थे। आम-महुआ के सघन पेड़ों के नीचे उनकी चितकबरी छाया टहल रही थी। एक असीम आनन्द, एक विस्मित-निस्तब्धता धरती पर फैली हुई थी। वसन्त इस शोभा को निहारता ही रह गया, उसे कुछ दीख न पड़ा, कुछ समझ न पड़ा। केवल एक जलन ही उसके साथ थी। संसार में और किसी को भी उसके प्रति ममता न थी।

वसन्त उठ खड़ा हुआ। जब जाना ही है, तो दुनियाँ भर की माया-ममता बटोर कर वह कहाँ रख सकेगा, यही वह सोचने लगा। सोचने तो लगा; मगर, सभी बातें मनुष्य के सोचने के अनुसार ही, नहीं हो जाया करतीं। ज्यों ज्यों वह संसार की माया-ममता से अलग होने की बात सोचता, त्यों ही त्यों, वे अधिक वेग से उसके मन-प्राण पर अधिकार कर रही थीं। उसे मालूम पड़ने लगा, मानों, एक बन्धन है, जो

कटजाने पर भी उसे नहीं छोड़ना चाहता; एक लहर है, जो सूख जाने पर भी उसके प्राणों में नहीं अँट रही है। उसका हृदय काँप रहा था, मन अशान्त हो रहा था, प्राण उन्मत्त हो रहे थे। वह केवल रो रहा था। गङ्गा-जमुना की धाराएँ उसकी आँखों से बह चली थीं।

घर छोड़कर वह बाहर निकल आया। एक बार प्यार-भरी आँखों से चारोओर देख कर वह चल पड़ा। वह ज़ोर से भाग जाना चाहता था, पर, पैर बढ़ते ही न थे। हृदय फट जाने का उपक्रम कर रहा था। दोनों हाथों से उसे दबाए, सिसकता हुआ, वह आगे बढ़ने लगा।

गाँव छोड़कर, जब वह कुछ दूर निकल गया, तो, उसकी आँखें सूख चुकी थीं। लालगञ्ज छोड़ते हुए उसका हृदय फटा जा रहा था, प्राण तड़प रहे थे। लालगञ्ज की परिचित एक-एक ईंट, एक-एक पत्ती की याद उसे बेकल कर रही थी। कितने दिनों की बसी हुई उस जगह की ममता आज उसके हृदय में उमड़ पड़ी थी। बहुत सोच कर भी वह निश्चय न कर सका कि घर छोड़ कर उसने अच्छा किया है या बुरा!

फिर भी, उसके पैर चलते ही गये, वह आगे बढ़ता ही गया।

३

माँ--बेटी

घर आते ही जोनाने देखा कि उसकी बुढ़िया माँ चन्द्रमा के धुँधले प्रकाशमें, ओसारे में बैठकर कुछ नाज पछोर रही है। बुढ़िया के आँखों की रोशनी मन्द पड़ गयी थी और बड़े कष्ट से अन्न का एक-एक दाना बिन-चुनकर वह साफ़ कर रही थी। उसका मन जोना की ओर लगा हुआ था और देर होते देखकर, मन ही मन, वह—शायद—घबरा भी रही थी।

जोनाने दरवाज़ा खोला। टूटी हुई किवाड़ों ने घर्घरकी आवाज़से उसका स्वागत किया। बुढ़िया की आँखें दरवाज़े पर जा-लगीं।

अन्दर आकर जोनाने मछलियों की गठरी माता के सामने रखदी। माँ के कुछ कहने के पहले ही, वह बोल उठी—"आज बड़ी देर हो गयी अम्मा! यहाँ मछलियाँ फँसती न थीं, मैं चली गयी थी बड़ी दूर, उस ओर !! फिर, घाटपर वसन्त

से बात करने में भी कुछ देर हो गयी। बेचारा बड़ा दुःखी है अम्मा! कल घर छोड़ कर, न जाने कहाँ चला जायगा!"

बुढ़िया का ध्यान जोना की बातों पर न था। वह कुछ दूसरी ही बात सोच रही थी। किन्तु, जोना की अन्तिम बात ने उसे आकर्षित किया। चौंक कर बोली—"कौन जोना? कौन कहाँ चला जायगा?"

जोना—"वसन्त।"

अम्मा—"वसन्त? वह कहाँ जायगा? क्यों जायगा?"

जोना—"अपने दुःखसे जायगा अम्मा। अब उस घरमें उसके लिए जगह नहीं रह गयी है। क्या करे बेचारा!"

अम्मा ने एक ऊँची साँस लेकर क्षणभर में वसन्त के छोटे से अतीत पर अपनी दृष्टि दौड़ायी। बोली—"उसने सुख का मुँह ही कब देखा है जोना! जो, अब दुख पाकर देस छोड़ रहा है? छोटी-सी जिन्दगी बेचारे की, दुख-ही-दुख से तो भरी हुई है!"

भोली-बालिका, वसन्त के दुःख की कल्पना से सिहर उठी। मनही मन वह सोचने लगी कि क्यों भगवान् किसी को दुखही और क्यों किसी को केवल सुखही देते हैं! वे तो बड़े न्यायी, बड़े पक्षपातहीन कहे जाते हैं। उनके यहाँ यह एक-तरफा न्याय कैसा? सहसा उसके हृदय में एक नवीन भावना

उत्पन्न हुई। ईश्वर के प्रति तीव्र विद्रोह के भाव से उसका हृदय भर गया। ईश्वर की सत्ता में ही धीरे धीरे उसे सन्देह होने लगा।

क्षणभर में उसके माथे में इतनी अधिक बातें भर गयीं कि उसे मालूम पड़ा, मानो, इतनी चिन्ता का भार वह संभाल न सकेगी। घबरा कर उसने कहा—"अम्मा! दिनरात तुम भगवान्-भगवान् किया करती हो, भला दुनियाँ में भगवान् नाम की कोई चीज़ कहीं है भी?"

बुढ़िया के धर्म-प्रवण हृदय में आघात लगा। लड़की की ओर विस्मयभरी आँखों से ताकती हुई—दाँत से जीभ काट-कर—वह बोली—"राम राम! यह क्या कहती है बेटी! भगवान् कहाँ नहीं हैं? वे सब जगह—हममें, तुममें, खरग-खम्भ में—वर्तमान हैं! उनके लिए तेरे मन में ऐसी बात कैसे आयी रे?"

अविश्वास से सिर हिलाती हुई जोना बोली—"आः, ऐसा नहीं है अम्मा! मेरी समझ है कि भगवान् नाम की किसी चीज़ का दुनियाँ में अस्तित्व नहीं है; और है भी अगर, तो,वह ग़रीबों का नहीं है, दुखियों और पीड़ितों से उसका कोई संबन्ध नहीं है। फिर, धनिकों के चापलूस, उस भगवान् का नाम ले-लेकर, हम-गरीब अपना समय क्यों बर्बाद करें अम्मा?"

"यह बात नहीं बेटी"—दुराग्रही लड़की का मन शान्त करने के लिए बुढ़िया मुलायम स्वर में बोली—"भगवान् ग़रीबों का साथ देते, उन्हें संकट से उबारते और उनका दुख दूर करते हैं।"

"झूठी बात है।" जोना ने कहा—"तुम्हींने तो कहा है अम्मा, कि वसन्त को एक दिन भी सुख नहीं मिला। उसके कष्टों की सीमा नहीं और दिनोंदिन वे बढ़ते ही जाते हैं।"

"यह अपना प्रारब्ध है बेटी! किये का फल तो भोगना ही पड़ेगा?"

"जब अपने ही किये का फल भोगना है, तो हम बीचमें भगवान् को क्यों घसीटते फिरें अम्मा? और, फिर, दुनियाँ में यही तो देखा जाता है कि जो जितना अच्छा, भला और ईमानदार होता है, वह उतना ही दुख पाता है।"

बुढ़ियाने चुपचाप जोना की बातें सुन लीं। उसकी बातें उसे अच्छी न लगीं, इसी से उसने कुछ उत्तर भी न दिया।

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहीं। सहसा, जोना ने पूछा—"कुछ खाने को नहीं है अम्मा! बड़ी भूख लगी है।"

सूनी आँखों से बुढ़िया ने जोना की ओर देखा। अपनी दुलारी बेटी से कैसे वह कह दे कि उसके पास कुछ नहीं है?

हाय ! उसके हृदय में इतनी माया-ममता न देकर भगवान् ने दो-मूठी अन्न उसे दिया होता !

माँ को निरुत्तर देखकर जोना ने कहा—"जाने दो अम्मा, तब तक मैं दो घूँट पानी ही पी लेती हूँ।"

बेटी की यह बात बुढ़िया के कलेजे में तीर-सी लगी। हाय ! आज भूखी बेटी को रोटी का एक टुकड़ा देने की सामर्थ्य भी उसमें नहीं है ! हे भगवान् !!

बुढ़िया के मुँह से एक ऊँची साँस निकल गयी। आँखों से मूल्यहीन आँसू की दो बूँदें भी, शायद, ढुलक पड़ीं। बुढ़िया ने उन्हें छिपाना चाहा था जरूर, मगर, जोना की तीखी आँखों ने उसे देख ही लिया। बोली—"यह क्या ! तुम रोती क्यों हो अम्मा ?"

बुढ़िया क्या बतलावे उस पगली लड़की को, कि मन की किस विषम वेदना से वह रो रही है ! बोली—"अपने करम को, अपने दिन को रोती हूँ, बेटी ! एक दिन था, जब तेरे बाप जीते थे, घर में खाने-पहनने की कमी न थी, दो को खिलाकर खाती थी; और, आज एक दिन है कि तुझे भी मैं खाना नहीं दे सकती। वे तो भागमान थे बेटी, अपना हिसाब-किताब बेबाक करके चले गये, मैं ही यह दिन देखने के लिये रह गयी। अब तो यह दुख देखा नहीं जाता।"

जोना खिलखिलाकर हँस पड़ी—"बस, इसी के लिए? यह कौन सी बड़ी बात है अम्मा? कल इन मछलियों को बेच लाऊँगी, पैसे ही पैसे हो जाँयगे। खाने की कमी थोड़े रह जायगी? तुम व्यर्थ रोती-दुख करती हो, इसके लिए। चलो!"

बुढ़िया को लेकर जोना चूल्हे के पास जा-बैठी। पछोरे हुए चावलों की किनकी इकट्ठी करके उसने हँड़िया पर चढ़ा दी। आग धधक कर जल उठी।

अवाक् होकर बुढ़िया जोना की ओर ताकती रह गयी।

पथ का परिचय

ज्यों-ज्यों दिन चढ़ने लगा त्यों ही त्यों वसन्त का शरीर अवसन्न होने लगा। भूख, प्यास और रास्ता चलने के कारण वह बहुत थक गया था; और, उसमें अब और चलने की सामर्थ्य न रह गयी थी।

नदी के किनारे किनारे, गाँव से बहुत दूर, वह निकल आया था। उस जगह—नदी के किनारे ही—आम, महुआ और जामुन के पेड़ों का एक सघन बगीचा था। नीचे हर-हर करती हुई नदी, अलस-मन्थर गति से प्रवाहित हो रही थी। चमकते हुए दोपहर के सूर्य का उज्ज्वल प्रतिविम्ब उसमें नाच रहा था।

वसन्त को वह स्थान बहुत पसन्द आया। नीचे उतरकर नदी के जल से तीन-चार चुल्लू जल पीकर उसने अपनी भूख-प्यास बुझाने की कोशिश की; फिर, आम के एक छायेदार वृक्ष की जड़ पर सिर रखकर वह लेट रहा। क्षणभर में ही

उसकी आँख लग गयी और वह स्वप्न के मधुर कल्पना-लोक में विचरण करने लगा।

बगीचे से निकल कर एक पतली और चिकनी पगडण्डी पासवाले शहर की ओर चली गयी थी। चारों ओर धरती के अंगों से हरियाली लिपटी हुई थी और बीच में वह पगडण्डी चमक रही थी; मानो, नीले आसमान में विद्युत की रेखा चमक रही हो !

दिन धीरे धीरे ढल चला। तरु-शिखरों पर सूर्य की पीली किरनें छिटक गयीं। उनकी प्रखरता कम होने लगी। उस समय, कई यात्री बगीचे की उसी पगडण्डी से नदी की ओर अग्रसर हो रहे थे !

यात्रियों की संख्या पाँच थी और दो उनमें स्त्रियाँ थीं, एक विवाहिता और दूसरी कुमारी। पुरुषों में एक नौकर मालूम पडता था; दो भद्र पुरुष थे।

नौकर के सिर पर सामानों की एक गठरी थी और हाथ में बिस्तरे का एक बन्डल। पुरुषों में एक के हाथ में एक छोटा-सा बैग था बाकी लोग हँसते-खेलते, बातचीत करते, आगे बढ़ रहे थे।

चलते चलते कुमारी बालिका ने कहा—"भैया, नदी अभी और कितनी दूर है ? मैं तो अब थक गयी हूँ।"

अमरनाथ ने मुस्किराकर बालिका की ओर देखा और कहा—"तुम थक गयी हो, बिन्दो ? चलो, थोड़ी देर यहीं बैठ कर सुस्ता लो, फिर आगे चलेंगे। अब तो पहुँच ही गयी हो। वह क्या नदी बह रही है।"

कुछ दूर और चल कर एक साफ़-सुथरी जगह पर वे लोग बैठ गये। बिन्दु के सुकुमार हृदय पर प्रकृति की इस सुन्दरता का गहरा प्रभाव पड़ा था। शहर की लड़की थी, जीवन में अनेक बार ऐसे सौन्दर्य का साक्षात्कार उसे नहीं हुआ था। वह अपनी चञ्चल-चकित आँखों से चारों ओर देखने लगी।

अमरनाथ एक चादर फैला कर लेट गये। उनकी स्त्री कुमुदनी उनके पास जा बैठी और बिन्दु तथा बंसी—दोनों भाई बहन—अलग बैठ कर खिलवाड़ करने लगे। अमरनाथ ने कहा—"कितने दिनों से जी कर रहा था कुमुद, कि एक दिन इस जगह आकर सुख से समय बिताया जाता। आज बड़े भाग्य से ऐसा समय मिला है। यह कितनी सुन्दर जगह है ? मालूम पड़ता है, मानो, प्रकृति ने अपने खजाने का सारा वैभव यहाँ लुटा दिया है, उदार-हृदय दानी की तरह। सन्ध्या के अन्धकार को गले से लगाती हुई नदी के वक्षःस्थल पर नाचने वाले सफेद बादलों और चन्द्रमा का प्रतिविम्ब कितना सुन्दर मालूम पड़ता है ! नीचे दूर तक फैली हुई हरियाली और ऊपर

झलमल चमकते हुए सितारे, नीचे बिछी हुई चन्द्रमा की उजि-याली और ऊपर छायी हुई अनन्त आकाश की नीलिमा, इनका कितना गहरा प्रभाव हृदय पर पड़ता है ! यह दृश्य कितना मोहक, कितना आकर्षक और कितना मधुर है ! सुख की उषा की लाली में इसी प्रकार जीवन यदि कट जाता कुमुद ! आः!!"

अभिप्राय भरी तीखी आँखों से कुमुदनी ने अमरनाथ की ओर देखा। उनकी इस भावुकता पर—मनही मन—वह हँस रही थी। बोली—"आपकी ही तरह मैं भी यदि कवि हो सकती तो अवश्य ही इस सुन्दरता और आकर्षण का प्रभाव मुझ पर पड़ता। पर, संयोग से, ऐसी घटना तो हो नहीं सकी; फिर मैं कैसे इतना अधिक अनुभव कर सकती हूँ। हाँ, यह समय और यह जगह सुन्दर है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु—कवि न होने पर भी—मेरी दृष्टि तो यहीं रुद्ध नहीं हो जाती। मोहकता, मधुरता और सौन्दर्य देखकर सुख और सन्तोष मुझे भी होता है; किन्तु जब सोचती हूँ कि इनका अस्तित्व कब तक है, तो हृदय में न जाने कैसा होने लगता है। उनकी सुन्दरता के अवसान का दृश्य ही मेरी आँखों के सामने नाच उठता और मुझे चञ्चल बना देता है।"

उदास दृष्टि से पत्नी की ओर देखकर अमरनाथ ने एक

ऊँची साँस ली। खिन्न होकर बोले—"जीवन में एक दिन भी हमसे तुम्हारे विचारों का साम्य हुआ होता कुमुद! ओफ़! क्या कहूँ।"

कुमुदिनी ने बाल-सुलभ सरलता से हँसकर उत्तर दिया—"तो इसमें चिन्तित होने की क्या बात है? यह तो बहुत स्वाभाविक है!"

अमरनाथ ने संक्षेप में ही कह दिया—"कुछ नहीं।"

कह तो उन्होंने दिया, पर वे सन्तुष्ट नहीं हुए। अनेक अनर्थक भावनाओं से उनका माथा भर गया। दुखी होकर उन्होंने मुँह फेर लिया। कुमुदिनी उनके लम्बे-लम्बे बालों में हाथ फेरने लगी।

बंसी उस समय विन्दु के साथ जंगल में घूम-घूम कर लकड़ियाँ चुन रहा था। बंसी अमरनाथ का छोटा भाई और विन्दु उनकी बहन थी। विन्दु यद्यपि बंसी से कई बरस छोटी थी, पर दोनों करीब-करीब एक ही उमर के जान पड़ते थे। लकड़ियाँ चुनते-चुनते बंसी को कुछ शैतानी सूझी। बोला—"तुम्हारी गीली लकड़ियाँ क्या कभी जल सकती हैं विन्दु? तुम व्यर्थ हैरान हो रही हो। आख़िर, भाभी लकड़ियाँ हमारी ही जलावेंगी।"

तिनककर विन्दु ने कहा—"कुछ दिखाई भी पड़ता है

तुम्हें ? ये सूखे चैले न जलेंगे तो क्या पेड़ की हरी टहनियाँ जलेंगी ?"

"सूखे चैले हैं ?"—मुँह में ही हँसी रोकते हुए बंसी ने कहा—"खूब ! धुँएँ से आँखें अन्धी न हो जायँ तो कहना। देखूँगा न, जला लोगी ये लकड़ियाँ। भाभी तो इन्हें छुएँगी भी नहीं।"

क्रोध से बिन्दु अधीर हो गयी। लकड़ियाँ चुनना छोड़ कर वह गुस्से से भरी हुई अमरनाथ के पास चली गयी। बोली—"देखो भैया, छोटे भैया मुझे चिढ़ाते है। अब मैं लकड़ियाँ न चुनूँगी।"

अमरनाथ मुस्किराये। बोले—"बंसी क्या कहता है ?"

बिन्दु—"कहते हैं, तुम्हारी लकड़ियाँ गीली हैं, जलेंगी नहीं।"

अमर०—"तो झूठ क्या कहता है ? गीली लकड़ियाँ भी कहीं जला करती हैं ?

जिसके पास फर्याद करने आयी थी, वही जब उसे अपराधी बताने लगा तो बिन्दु रुआँसी-सी हो गयी। भरी हुई आँखों से उसने कुमुदिनी की ओर देखा। बिन्दु की घबराहट देखकर कुमुदिनी ने अमरनाथ को झिड़क दिया। बोली—"आपलोग दोनो भाई एक हो जाते हैं ! जैसे बंसी, वैसे आप;

मैं तो बंसी बाबू की लकड़ियाँ छुऊँगी भी नहीं, बिन्दु-रानी की लकड़ियाँ ही जलाऊँगी। हाँ!"

उस समय बंसी भी वहीं आ गया था। भाभी की बात सुनकर विजय के गर्व से भरी हुई बिन्दु ने बंसी की ओर देखा। वह हँस पड़ी। बंसी के साथ-साथ अमरनाथ और कुमुदिनी भी हँस पड़े। झगड़ा खतम हो गया। बिन्दु की जीत रही।

अब रसोई की तैयारियाँ होने लगीं। प्रोग्राम इन लोगों का यह था कि रात में भोजन आदि की व्यवस्था यहीं हो और फिर कुछ विश्राम करके खिली हुई चाँदनी में नाव की सवारी से घर लौट चला जाय। नाव वाले को पहले से कह दिया गया था। वह समय पर नाव ले कर आवेगा।

नौकर ईंटें चुन लाया। बंसी ने लकड़ियाँ इकट्ठी कर दीं। बिन्दु आटा गूँधने लगी। जब सब तैयारियाँ हो गयीं तो आग जलाने के लिए दियासलाई ढूँढ़ी जाने लगी। बिन्दु ने सारी गठरी ढूँढ़ डाली। बोली—"भाभी, दियासलाई नहीं लायी हो क्या?"

कुमुदिनी—"आयँ! दियासलाई नहीं है?"

बिन्दु—"ना।"

कुमुदिनी ने स्वयं ही एक-एक कपड़ा ढूँढ़ डाला पर

दियासलाई का कहीं पता न लगा। हारकर, वह अमरनाथ की ओर देखने लगी। बोली—"दियासलाई तो आयी ही नहीं। अब ?"

अमर०—"अब क्या ? मौज करो। चाँदनी की बहार लूटो। मुझे तो इतने ही से सन्तोष है, पेट भर गया है।"

कुमु०—"आपको तो हर वक्त दिल्लगी ही सूझती है। अब मैं क्या करूँ ? यहाँ नजदीक-पास में कोई गाँव भी तो नहीं है।"

अमरनाथ चुप रहे। किंकर्तव्य-विमूढ की तरह कुमुदिनी उनकी ओर ताकती रही।

अपनी भावनाओं में लीन, पेड़ की जड़ पर सिर रखकर सोच में डूबा हुआ, वसन्त यह सब देख रहा था। उन लोगों की हलचल और चिन्ता देखकर स्वभावसे उसके मन में कौतूहल हुआ। अपना अशान्त मन लेकर धीरे-धीरे वह उन लोगों की ओर बढ़ा।

एक अपरिचित को सामने देखकर कुमुदिनी ने घूँघट सँभाल लिया, बिन्दु झिझककर अलग हट गयी। बंसी ने झट से पूछ ही तो लिया—"आपके पास दियासलाई होगी ?"

"दियासलाई ?"—वसन्त ने कहा—"नहीं; मगर, आग मैं शायद ला सकूँगा। उससे आपका काम चल जायगा ?"

"हाँ-हाँ" बंसी ने कहा—"बड़े मज़े में। यहाँ पास में कोई बस्ती है क्या ?"

"बस्ती तो नहीं है कोई; मगर, एक लकड़हारे की झोपड़ी मैंने रास्ते में देखी है, जब सबेरे मैं यहाँ आ रहा था।"

"बहुत दूर है क्या ?"

"हाँ, कुछ नज़दीक तो नहीं है। पर आग मैं जल्दी ही ला दूँगा।"

"आप क्यों तकलीफ करेंगे? मुझे बता दीजिए। मैं जाकर ले आऊँ।"

तकलीफ ? वसन्त के हृदय में एक नवीन अनुभूति हुई। ये लोग क्या जानते हैं कि तकलीफ—दुधमुँहें बच्चे की तरह—उसके जीवन के साथ लिपटी हुई है !!

मुस्किराकर वसन्त ने कहा—"मुझे तकलीफ नहीं हुआ करती। आप कहाँ जायँगे, मैं अभी आता हूँ।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वसन्त तेज़ी से एक ओर चल पड़ा। बंसी के साथ अमरनाथ और कुमुदिनी विस्मय से अवाक् होकर एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। विन्दु उस समय कुछ सोच रही थी। डूबी हुई थी।

—:०:—

५

ईश्वरद्रोही

एक दिन जोना की माँ ने उसको बुलाकर पास बैठाया और कहा—"बेटी! अब ज्यादा दिन तेरे साथ मैं रह न सकूँगी। जीवन भर अभाव और वेदनाओं से लड़ते लड़ते शरीर का सारा रक्त सूख गया है। आघात का एक हलका सा आक्रमण भी मुझे अब बर्दाश्त न होगा। मेरे बाद, न जाने तेरी क्या दशा होगी बेटी!"

बुढ़िया की आँखों से आँसू की धारा बह चली। बेटी के भविष्य की बात सोचकर वह विचलित हो उठी। हाय, उसकी भोली-भाली बालिका!!

बालिका जोना ने आँखों में गम्भीर विषाद भरकर तीखी नज़र से बुढ़िया की ओर देखा। बुढ़िया रोती रही, जोना देखती रही; आखिर, अधीर होकर उसने कहा—"तुम रोओ मत अम्मा, तुम्हें मेरी कसम!"

बुढ़िया ने आँसू पोंछ लिए। बालिका के शपथ की वह

उपेक्षा न कर सकी। बोली—"कूच का डङ्का तो अब बज ही गया है जोना, लेकिन तुझसे एक बात कहे जाती हूँ। यदि मेरी बात तू याद रखेगी तो दुनिया में तुझे दुख न होगा; भूल जायगी, तो दुखों की सीमा भी न रहेगी। यह दुनियाँ ठगों और लुटेरो से भरी हुई है, यहाँ तू किसी पर विश्वास न करना और न किसी से ज्यादा हिलना-मिलना ही। भूख-प्यास से गल-गलकर मर जाना बेटी, मगर दुनियाँ की रफ्तार के साथ क़दम न बढ़ाना। बस, यही मुझे कहना था। मैं कह चुकी। इस बात को गाँठ बाँध लेना, भूलना नहीं।"

बुढ़िया चुप हो गयी। जोना पत्थर की तरह निस्पन्द भाव से खड़ी रही। माँ की बातें उसने सुन ली थीं। उत्तर के लिए उसके पास एक शब्द भी न था। अशान्ति का तूफ़ान उसके हृदय में लहरें ले रहा था। तरह-तरह की अनर्थक चिन्ताओं से उसका माथा भर गया, हृदय उद्विग्न हो गया था।

उस दिन सन्ध्या से ही बुढ़िया की हालत बिगड़ने लगी। सहाय-सम्पत्तिहीन जोना, विवश होकर, चुपचाप उसके सिरहाने बैठी थी और एक अनर्थ की प्रतीक्षा में अपनी पथ-रायी हुई आँखों को लगाये हुए थी। क्या करती?

जोना ने सारी रात आँखों में काट दी। माता की पीड़ा

और बेचैनी से उसका हृदय जल रहा था; पर हाय! वह विवश थी, लाचार थी, हाथ पर हाथ रखकर सब कुछ देखने के लिए। काल के समान बली कौन है?

सबेरा अभी हुआ नहीं था। आसमान पर निशीथ की काली चादर पड़ी हुई थी, उसके अन्तराल में सफेदी की एक हल्की रेखा छिपी दीख पड़ती थी। बुढ़िया ने जोना को बुलाया। बोली—"बस बेटी! अब समय पूरा हो गया। वह देख, यमराज के दूत मेरे लिए निमन्त्रण लेकर खड़े हैं। हमेशा के लिए आज तुझसे विदा होती हूँ। मेरी बातें याद रखना। झूठमूठ का शोक-दुःख न करना। कुछ लाभ नहीं होता।"

बुढ़िया ने साँस तोड़ दी। उन्मत्त की भाँति जोना चीख उठी। उसके हृदय में एक आग जल रही थी। उसे न कोई बुझाने वाला था, न शान्त करने वाला। आप ही आप वह भभक उठी थी, जीवन की अनेक स्मृतियों के साथ—आप ही आप—वह बुझ भी जायगी।

घण्टों तक, जब आँसुओं की धारा प्रवाहित होती रही और क्रन्दन का सोता उमड़ता रहा, तो, उनका वेग कुछ कम हुआ। जोना सँभल गयी। उसके सामने माता की लाश पड़ी हुई थी। उसके माथे में अशान्ति का बवण्डर उठ रहा था। संसार के प्रति तीव्र घृणा और विद्रोह का भाव उसके हृदय

में भर गया था। वह लाश की ओर देखती जाती और सोचती जाती थी कि जिस अम्मा ने पाल-पोस कर मुझे इतना बड़ा किया, जिसने एक छन के लिए भी अपनी छाती से मुझे कभी अलग नहीं किया, वह आज न जाने किस लम्बी यात्रा के लिए मुझे दुनियाँ की इस विषम हलचल में अकेली छोड़कर विदा ले चुकी है। मौत के समान निष्ठुर और ज़बरदस्त कौन है? मनुष्य देखता ही रह जाता और मौत उसके सगे-सम्बन्धियों को सदा के लिए उससे अलग कर देती है। वह कुछ कर नहीं सकता। आह! वह कितनी विवश, कितनी शक्तिहीन है!! और, उसकी यह बेबसी कितनी दयनीय है, कितनी करुणापूर्ण!!!

बैठे ही बैठे, सारी रात बीत गयी; दिन भी बीत चला, दोपहर हो गयी। अड़ोस-पड़ोस के लोगों को जब बुढ़िया के शरीरान्त की बात मालूम हुई, तो, कुछ लोग जमा हो गए। लाश को निकालने की व्यवस्था की जाने लगी। जोना बिराने की तरह अलग खड़ी होकर चुपचाप उन लोगों की ओर देखती रही। उसे न बोलने की शक्ति रह गयी थी, न अब और कुछ देखने का साहस। वह काठ की तरह खड़ी थी। चुप्त थी। बेहोश थी।

लाश लेकर लोग चले गए। घर सूना पड़ा रह गया।

जोना की आँखों से आँसू की धारा टूटती न थी। सूना घर उसे काटने को दौड़ता था। वह आपे में न थी।

सन्ध्या—धीरे-धीरे—हो आयी। उन्माद की एक लहर जोनाके प्राणों में उथल-पुथल मचा रही थी। अनेक प्रकार की बातें उसके माथे में भर रही थीं। एक दिन, उसके हृदय में ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह हुआ था। आज, अविश्वास की वह कालिमा हृदय के आकाश पर सावन-भादों के सजल बादलों की तरह फैल गयी। उसका हृदय अशान्त था, दुखी था। इस आघात ने उसे विद्रोही बना दिया। उसकी आँखें सूखी थीं, हृदय रो रहा था। उसके ओठ काँप रहे थे और दाँतों से वह उन्हें चबा रही थी। मालूम पड़ता था, मानों, क्रन्दन का उच्छ्वास उसका हृदय फाड़कर निकल पड़ने का उद्योग कर रहा हो।

अन्धकार जब जोना के आँगन में घनीभूत हो उठा तो उसे हृदय का सूनापन असह्य हो गया। घर छोड़कर वह गली में निकल आयी और गतिशील उसके पैर अनायास ही एक ओर बढ़ चले। नदी के किनारे-किनारे, कुछ दूर, वह निकल गयी। चन्द्रमा उस समय अपनी सोलहों कला से चमक उठे थे और उनका रजत-रूप नदी के वक्षःस्थल पर नाच रहा था। नदी के किनारे उगे हुए वृक्षों की पत्तियों के

अन्तराल से छनकर आती हुई ज्योत्स्ना—मालूम पड़ता था, मानों—धरती के श्यामल अंगों पर चन्द्ररश्मियों ने बेल-बूटे काढ़ दिए हों। प्रकाश और छाया के उसी गाढ़ आलिङ्गन के मध्य में जोना अपना चिन्तित और उदास मन लेकर जा बैठी।

एक अधेड़ अवस्था की स्त्री कमर पर भरा हुआ घड़ा लेकर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ी। पेड़ के पास आने पर उसे मालूम पड़ा, मानों, उसके नीचे कोई मनुष्य-मूर्ति बैठी हो। स्वभाव से ही भीरु, स्त्री का हृदय, उसे देखकर काँप उठा। वह ज़ोर से चिल्ला पड़ी और घड़ा उसके हाथ से छूटकर लुढ़कता हुआ नीचे चला गया।

जोना का ध्यान टूटा। स्त्री को घबराते देखकर इस विपत्ति में भी उसके ओठों पर हँसी नाच उठी। उसने पुकार कर कहा—"मँगरू की अम्मा हो क्या? क्या हुआ चाची? तुम डर गयीं?" जोना धीरे-धीरे स्त्री के समीप आ-गयी।

भय से उस समय भी स्त्री का शरीर काँप रहा था। जोना को देखकर वह कुछ स्वस्थ हुई। संभलकर बोली—"हाँ बेटी, डर तो मैं सचमुच ही गयी थी। कैसा सन्नाटा है!"

"हाँ" कहकर जोना चुपचाप मँगरू की अम्मा की ओर ताकती रही। मँगरू की अम्मा जब कुछ और सँभली तो

उसने पूछा—"सुना, तुम्हारी अम्मा नहीं रहीं जोना। क्या हो गया था उन्हें ?"

"हुआ क्या था चाची, उनका समय हो गया था। हमारे भाग खोटे थे, अधिक दिन साथ रहने का सुख भी लिखाकर नहीं आयी थी।"

"हाँ बेटी, यही बात है, नहीं तो अभी उनकी उमर कौन अधिक हुई थी? हम लोगों से साल दो साल छोटी ही रहीं होंगी।"

"मुझे तो चाची, सारा संसार अम्मा के बिना सूना दिखाई पड़ता है। जी होता है कि इन चञ्चल लहरों में समाकर सदा के लिए सो जाऊँ। जब अम्मा ही न रहीं तो मैं रहकर क्या करूँगी।"

"भगवान् के रेख में कौन मेख मार सकता है जोना! वे जो करेंगे उसे तो पत्थर होकर देखना-सुनना पड़ेगा ही!"

"भगवान्? भगवान् का नाम तुम न लो चाची! यह नाम सुनती हूँ तो देह में आग लग जाती है। दुनियाँ को ठगने के लिए धूर्तों ने दुनियाँ की आँखों के सामने यह एक रङ्गीन पर्दा खड़ा कर रक्खा है। मनुष्य और मनुष्य-समाज के कल्याण के लिए—संसार की आँखों से—अन्धविश्वास का यह झलमल-पर्दा हटाना ही पड़ेगा। ईश्वर और भगवान् नाम

का कोई जीव चराचर में नहीं है; और, यदि वह है भी तो पीड़ितों और दुखियों का सहायक नहीं, धनिकों तथा विलासियों का खुशामदी है। हमें उसका वहिष्कार करना ही होगा। तुम इस तरह क्यों देखती हो चाची, मैं सच्ची बात कह रही हूं।"

आश्चर्य से अवाक् होकर मँगरू की अम्मा जोना की ओर देखती रह गयी। उसने समझा कि माता के मरने से शायद जोना का सिर फिर गया है।

आँखों में घृणा और तिरस्कार की ज्वाला भरकर जोना द्रुतगति से वहाँ से अदृश्य हो गयी।

—:-०-:—

६

पुण्य-पर्व

दो सूखी करिडयों के सहारे आग की कुछ चिनगारियाँ लाकर जब वसन्त ने बंसी के सामने रख दीं, उस समय भी वे सब लोग स्तब्ध से खड़े वसन्त की बात ही सोच रहे थे। वसन्त के हाथ से आग लेकर बंसी ने धरती पर डाल दिया और फिर चूल्हा बनाने का उद्योग करने लगा। देर बहुत हो गयी थी, इसलिए वह घबरा रहा था। वसन्त छन भर चुप-चाप खड़ा रहा, फिर बंसी के हाथ से ईंटें लेकर बोला—"लाइए भैया जी, मैं बना दूँ। आप से ठीक न होगा।"

बंसी इधर-उधर करने लगा, तब तक वसन्त ने ईंटों को ठीक-ठाक करके लकड़ियाँ सुलगा दीं। चूल्हा फूँकते-फूँकते उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे और मुँह लाल हो उठा। वसन्त को, किन्तु, इसकी परवाह न थी। पथ के इन परि-चितों के प्रति उसके हृदय में एक आकर्षण, एक ममता उत्पन्न हो गयी थी। आज जीवन में पहली बार वह 'अपनेपन'

का अनुभव कर रहा था। वह अनुभूति कितनी सुखद, कितनी तृप्तिकर थी!

सब लोग मुग्ध-विस्मित-नेत्रों से वसन्त की ओर देख रहे थे। इस अपरिचित बालक ने अपनी सज्जनता और सौहार्द से उन लोगों के हृदयमें अपना स्थान बना लिया था। वे विस्मित थे, चकित थे, अवाक् होकर वसन्त की ओर ताक रहे थे।

पुरुषों की अपेक्षा नारी के हृदय में माया-ममता का स्थान, शायद, कुछ अधिक होता है। दूसरे के सुख-दुख का अनुभव करने में पुरुषों की अपेक्षा वेअधिक समर्थ होती हैं, अनुभव करती भी हैं। विन्दु ने जब देखा कि चूल्हा फूँकते-फूँकते वसन्त की आँखों से आँसू निकल रहे हैं और सब लोग चुपचाप बैठे ताक रहे हैं, तो, उससे न रहा गया। धीरे-धीरे कुमुदिनी से बोली—"भाभी, उनसे कह दो, हट जायँ। मैं आग सुलगा लूँगी। देखती नहीं, बेचारे की आँखें धुएँ से भर गयी हैं!"

कुमुदिनी ने विन्दु की ओर देखा। उसकी आँखों में माया थी, सहानुभूति थी। व्यङ्ग से उसके गालों में गुलचे मारती हुई कुमुदिनी ने कहा—"आखिर तबियत ने 'स्ट्राइक' कर दिया न? कहती थी, उनसे, कि बीबी को न ले चलो, न जाने

सामने में ही किस पर मर जायँ! लेकिन मेरी बात कौन सुनता है?"

विन्दु—"जाने दो भाभी, तुम्हारी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।"

कुमु०—"अब न अच्छी लगेंगी बीबी, मैं तो पहले ही से जानती थी।"

विन्दु—"तुम मुझे बहुत तङ्ग करती हो। तुमसे न बोलूँगी।"

कुमु०—"मुझसे क्यों बोलोगी, अब तो मेरी बोली भी अच्छी न लगेगी।"

विन्दु—"मैं भैया से कह दूँगी, भाभी, मुझे बहुत तङ्ग न करो।"

कुमु०—"भैया से? उनसे नया नाता लगाया है क्या??"

विन्दु—"मुझे बैठने न दोगी? लो, मैं जाती हूँ।"

सचमुच ही विन्दु उठ खड़ी हुई। कुमुदिनी ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोली—"न रूठो रानी, मैं उन्हें वहाँ से हटा देती हूँ।"

कुमुदिनी से अमरनाथ से कहा कि चूल्हे के पास से वसन्त को हटा दो, मैं रसोई बनाऊँगी।

वसन्त हट गया। कुमुदिनी चूल्हे के पास जा बैठी। बंसी और वसन्त और विन्दु मिलकर कुमुदिनी की सहायता करने

लगीं। कुछ ही देर में वसन्त उन लोगों में ऐसा घुल-मिल गया, जैसे, बरसों का परिचित हो। वसन्त का स्वभाव कुमुदिनी को बड़ा भला मालूम हो रहा था। विन्दु के मन में एक हलचल-सी हो रही थी। सब लोग हँसते-बोलते काम करते जाते थे; मगर, विन्दु चुप थी।

कुमुदिनी पूरियाँ उतारने लगी, विन्दु ने बेलना शुरू किया। और लोग आस-पास बैठकर बातचीत करने लगे।

अमरनाथ ने कहा—"वसन्त, इतनी बातें हुईं, मगर तुमने अपने बारे में कुछ कहा नहीं?"

वसन्त चुप रहा। उसने सिर झुका लिया।

अमरनाथ ने फिर कहा—"क्यों?"

"जाने दीजिए भैया जी!"—वसन्त ने कहा—"उन बातों को सुन कर क्या कीजिएगा? दुख होगा।"

"नहीं, वसन्त! तुम छिपाओ मत। तुम्हारा हाल जानने की मुझे बड़ी इच्छा हो रही है।"

वसन्त ने मुँह खोला। अतीत की अनेक दुख-सुख से भरी स्मृतियाँ उसके सामने नाच उठीं। धीरे-धीरे, अपनी सारी कथा उसने अमरनाथ को सुना दी, कभी हँसकर, कभी रोकर। कथा समाप्त करते हुए उसने कहा—"नहीं जानता भैया जी, संसार सागर की भयानक लहरें मेरे जीवन के नाव

को कहाँ ले जाकर पटकेंगी, यह भी नहीं जानता कि दुर्भाग्य की आँधी, किस विजन और अपरिचित लोक में मुझे पहुँचा कर सन्तोष की साँस लेगी। घर से निकला हूँ; किन्तु संसार में मेरा कोई स्थान नहीं। धनहीन, जनहीन, सहाय-सम्पत्ति-हीन—मेरे लिए—संसार में कोई स्थान रिक्त नहीं है भैया जी ! ओः !!"

देखने वालों के दिल में हलका-सा आघात लगाते हुए एक उसाँस वसन्त के मुँह से निकल गयी। कथा तो समाप्त हो गयी, पर सुनने वालों के मन पर एक विषादमय स्थायी प्रभाव छोड़ती गयी। बंसी और अमरनाथ स्तम्भित—से चुपचाप वसन्त का मुँह देखते रह गए। कुमुदिनी ने आँखें पोंछ लीं; और बिन्दु ? वह तो किसी प्रकार अपने को सँभाल न सकी। उठकर अलग चली गयी।

कुमुदिनी ने अमरनाथ के कान में कहा—"देखो, तुम इस लड़के को अपने साथ लिए चलो। मुझे बड़ी दया आ रही है।"

रहस्यभरी आँखों से अमरनाथ ने एकबार कुमुदिनी की ओर देखा। बोले—"जरूर लिए चलूँगा; मगर, वह चले भी!"

"चलेगा"—बच्चों की तरह उत्सुक होकर कुमुदिनी बोल उठी—"चलेगा क्यों नहीं ? तुम्हारे कहने भर की देर है।

देखते नहीं, कुछ ही देर में हम लोगों से कितना हिल-मिल गया, जैसे अपने ही परिवार का आदमी हो।"

अमरनाथ बोले नहीं। हृदय की मूक-भाषा में कुमुदिनी की बात का उन्होंने समर्थन किया।

पूरियाँ उतर चुकी थीं। थोड़ी देर में भोजन की व्यवस्था होने लगी। वसन्त को भी कुमुदिनी ने खिलाया। वह भला इन्कार कैसे कर सकता था?

अमरनाथ ने पूछा—"क्यों वसन्त! भोजन कैसा हुआ?"

वसन्त ने कुछ उत्तर न दिया। उसका सिर झुक गया। आदर और ममता की मादकता ने उसे बेसुध बना दिया था। उसकी वाणी मूक हो गयी थी।

अमरनाथ ने फिर भी छेड़ा—"तुम्हें अच्छा नहीं लगा वसन्त! क्यों न?"

वसन्त की आँखें भर आयी थीं। विस्मय-विस्मित आँखों से लोगों ने देखा कि सचमुच ही वह रो पड़ा। आँसुओं के सिवा, विह्वल-हृदय की अभिलाषा और किस अच्छे ढङ्ग से व्यक्त हो सकती है?

वसन्त ने कहा—"आपके इस आदर-यत्न का भार सँभालने का बल मेरे दुर्बल हृदय में कहाँ है भैया जी? आपकी सदयता

ने मेरी वाणी को, मेरी भाषा और अभिलाषा को मूक कर दिया है। मैं क्या कहूँ?"

अमरनाथ ने 'पागल' कहकर वसन्त को अपनी ओर खींच लिया। वसन्त ने अपने को उन पर छोड़ दिया। यह भाव—आह!—कितना स्वाभाविक, कितना ममत्वपूर्ण था!!

भोजन सब लोगों ने समाप्त कर लिया था। उत्सुक आँखों से, वे, नाव की प्रतीक्षा करने लगे।

चन्द्रमा आकाश में ऊपर चढ़ आया था। स्निग्ध-ज्योत्स्ना चारोंओर फैल गयी थी। दूर—लहरों पर थिरकती हुई—नाव दीख पड़ी। एक उच्छ्वसित हर्ष-ध्वनि से वह स्थान गूँज उठा। बिखरी हुई चीज़ें लोगों ने झटपट इकट्ठी कर डालीं।

नाव तट पर आ लगी। सामान रख दिया गया। सब लोग—एक-एक करके—नाव पर चढ़ गये। अन्त में अमरनाथ ने वसन्त का हाथ पकड़ कर नाव पर उसे खींच लिया। वसन्त अस्वीकार न कर सका। जाल में फँसी हुई भोली हरिणी की तरह दीन आँखों से वह चारों ओर देखने लगा। बोला—"मैं कहाँ जाऊंगा भैया जी? भाग्य की निर्जनता के साथ ही मुझे अकेला रहने दीजिए न?"

अमरनाथ ने कहा—"चुप रहो।"

वसन्त चुप रहा।

नाव खुल गयी। तरल-चञ्चल और चन्द्र-ज्योत्स्ना से चमकती हुई तरङ्गों के साथ—ताल-ताल पर थिरकती हुई—नाव बह चली। मुग्ध-सी, विस्मित-सी इन यात्रियों की आँखें रजनी के अगाध सौन्दर्य को निरखने लगीं।

वसन्त चिन्तित था, भीत था, विस्मित भी था। उसने सोचा—"क्या यही उसके जीवन का पुण्य-पर्व है?"

"पुण्य-पर्व!" आह भोले बालक! तू कितने अन्धकार में है!

७

दो-आँखें

विलियम मेज़ पर झुककर बैठा हुआ था। कोटरलीन उसकी दोनों आँखें किसी गम्भीर चिन्ता में डूबी हुई थीं। वहाँ एकान्त था। उसके हृदय में शान्ति न थी। कोई अभाव रह-रहकर उसके हृदय को अस्थिर कर देता था। काँपते हुए उसके ओठ, उसके अशान्त मन को स्वच्छ दर्पण की तरह चमका रहे थे। हिलती हुई उसकी उँगलियाँ, उसके मन की बेकली का विज्ञापन कर रही थीं। वह पैर हिला-हिलाकर चञ्चल मन को बहलाने की चेष्टा कर रहा था।

खिड़कियाँ खुली हुई थीं। सन्ध्या के धूमिल अन्धकार के साथ ठण्ढी हवा कमरे में आ रही थी। विलियम चुपचाप बैठा, आज से दस बरस पहले की बात सोच रहा था। वह सोच रहा था, सूरज की उन रङ्गीन किरनों की बात, जो भोर होते ही संसार के हृदय पर बिखर जाती हैं; चन्द्रमा की उस मादक ज्योत्स्ना की बात, जिसे पूर्णिमा की रात में अधीर होकर वह दुनियाँ पर न्योछावर कर देता है; उन रंगीन तितलियों

और फूलों की बात, जिनकी सुन्दरता अपना सानी नहीं रखती और तरुपत्रों के अन्तराल से छनकर आयी हुई, हिलती हुई, चन्द्रमा की उन चितकबरी किरनों की बात, जो निर्जन-निशीथ में बड़े मनोरम और आकर्षक मालूम पड़ते हैं। उसे और भी अनेक बातें याद आयीं, शायद, उन दिनों की छोटी से छोटी भी कोई बात छूट न पायी, पर, आज सब सपना था। एक खोया हुआ सपना, जिसकी केवल स्मृति ही रह गयी हो—क्षीण, धुँधली, अस्पष्ट !!!

आज प्रकाश की एक किरन देख पाने के लिए उसका हृदय अधीर, विह्वल हो रहा था। दस बरस पहले के उन ज्योतिर्मय दिनों की याद उसे आज बेकल कर रही थी। सुख के उन दिनों की स्मृति आज उसके दुख का कारण हो रही थी।

उसे याद आयीं, दस बरस पहले की वे अशुभ घड़ियाँ, जब, सहसा, एकदिन—उसके देखते ही देखते—उसकी आँखों का प्रकाश सदा के लिए अन्तर्हित हो गया। चेचक से उसकी दोनों आँखें मारी गयीं। प्रकाश ने चिरकाल के लिए उससे विदाई ली। उसकी आँखें ज्योतिहीन—अन्धी—हो गयीं।

वह चिल्ला उठा, रो पड़ा—"माँ ! मेरी आँखों को क्या हो गया ? मुझे तो कुछ दीख ही नहीं पड़ता।"

घबराकर माता नोरा ने बच्चे की ओर देखा। देखते ही देखते उसकी आँखें प्रकाशहीन हो गयीं। नोरा देखती ही रह गयी। वह विवश थी, असमर्थ थी। सब कुछ उसे देखना पड़ा।

"मेरी आँखें फूट गयीं माँ? मैं अन्धा हो गया माँ ??" बालक विलियम चिल्लाकर रो पड़ा। एक अभावनीय कष्ट की पीड़ा से उसके प्राण छटपटा उठे। वह लोट गया। आह! उसके अन्तर की व्यथा !! उसे कौन समझ सकता है?

नोरा चुप थी। उसका हृदय रो रहा था। किस आशा पर, किस विश्वास पर, वह अपने बच्चे को सान्त्वना दे?— "चुप रह विलि, तू अच्छा हो जायगा। डाक्टर तेरी आँखें बना देगा?"

वह दिन किसी तरह बीत ही गया। नोरा ने अपना सारा बल, सारी शक्ति लगाकर विलियम की आँखों की चिकित्सा करायी। कितने प्रसिद्ध चक्षुचिकित्सकों ने उसकी आँखें देखीं। निराशा से सिर हिला दिया। गयी हुई आँखें भी कहीं फिर वापस लौटती हैं?

विलियम के मन की व्यथा कौन जान सकता है? कभी-कभी अन्धकार की यह व्यापकता उसे उन्मत्त बना देती थी। वह ऊबकर चिल्ला उठता था, पर, दुनियाँ की हलचल में

कौन किसकी आर्तव्यथित ध्वनि सुन पाता है? सुनने की फुरसत ही किसे है?

विलियम अपने विचारों में उलझा हुआ था। उसे कमरे में किसी के पैरों की आवाज़ सुन पड़ी। उत्सुक होकर उसने दरवाज़े की ओर सिर उठाया—"माँ!" उसने पुकारा—"माँ! तू ने बहुत देर कर दी!"

किन्तु, उत्तर नहीं मिला। विलियम सोच रहा था, माँ उत्तर क्यों नहीं देती; तब तक, किसी के कोमल-कोमल हाथ, उसकी पीठ पर पड़े। उसकी पीठ पर थपकियाँ देती हुई आने वाली सुन्दरी ने कहा—"मैं वह नहीं हूँ प्यारे विलि! तुम मुझे पहचानते नहीं?"

"ओहो! तब तुम हो लुइस!! आओ; तुम खूब आयीं। इस समय मैं बहुत दुखी हो रहा था।"

"क्यों?" लुइसी ने कहा—"क्या बात है विलि? कुछ नयी घटना है क्या?"

"नहीं। नयी कुछ नहीं। पर, वह पुरानी ही क्या जीवन की रङ्ग-भूमि पर वेदना और अभाव का काला परदा डाल देने के लिए पर्याप्त नहीं है लुइस! ओफ़!!"

लुइस ने विलियम के हृदय की व्यथा समझी। उसके बिखरे हुए, लम्बे-लम्बे, भूरे बालों में उँगलियाँ उलझाती हुई

बोली—"यह बात जब सोचती हूँ विलि, तो जी न जाने कैसा करने लगता है। सब कुछ मैं देखती हूँ, सुनती हूँ, पर, जब याद आता है कि इनमेंका तुम कुछ भी देख-सुन नहीं सकते, तो, प्राण रो उठते हैं, हृदय अधीर हो जाता है।"

"तुम नहीं समझ सकतीं लुइस! मैं जितना बर्दाश्त करता हूँ, न जाने उतना दूसरा कोई कर सकेगा या नहीं!! जो चीज़ न देखी-सुनी हो, जिसके बारे में अपना कोई ज्ञान न हो, अपनी कोई कल्पना न हो, उसके लिए मनुष्य उतना उत्सुक उतना अधीर न होगा। पर, मुझे तो संसार का सौन्दर्य निरखने का मौका मिल चुका है और आज वह याद, वह स्मृति ही मुझे अत्यन्त दुखद हो रही है। मनुष्य कितना असमर्थ, कितना असहाय होता है लुइस! इसका अनुभव प्रतिपल आज मैं कर रहा हूँ।"

"सचमुच ही विलि! मनुष्य की इस असमर्थता पर रोना आता है।"

लुइसी की आवाज़ भारी थी। विलियम ने अनुभव किया। लुइसी की आँखों पर हाथ फेरकर बोला—"यह क्या लुइस! तुम रोती हो? मुझे कौन दुख है? नहीं हैं मेरी अपनी आँखे, मैं तुम्हारी आँखों से देखूँगा। यही न! हम-तुम अलग हैं लुइस! पागल!!"

विलियम ने लुइसी को अपनी ओर खींचा। लुइसी ने अपने को विलियम पर छोड़ दिया। एक प्रकार के सुख से, तृप्ति से, प्रसन्नता से, उसका हृदय भर गया था।

विलियम ने लुइसी को बहलाने के लिए ही कह दिया था कि उसे कोई दुख नहीं है। वास्तव में बात ऐसी नहीं थी। उसके हृदय में जो पीड़ा थी, वह अन्तहीन सागर की तरह उन्मत्त होकर लहरा रही थी।

दोनों ही चुप रहे। दोनों ही के हृदय में अनेक भावनाएँ बवण्डर की तरह प्रवाहित हो रही थीं। लुइसी, विलियम की छाती में सिर छिपाकर एक सुख का अनुभव कर रही थी। सुख की उस ममता को वह छोड़ न सकती थी। माया का सपना कहीं खो न जाय, इसी से वह चुपचाप थी। कुछ बोलती न थी।

विलियम ने कहा—"जीवन का सारा सुख आँखों के साथ ही खो चुका हूँ लुइस! केवल एक तुम्हीं रह गयी हो। नहीं जानता, तुम्हें भी रख सकूँगा या नहीं। इन अरक्षित हाथों में ओफ़...!"

लुइसी चौंकी। विलियम क्या कहना चाहता है! प्रश्न की दृष्टि से उसने विलियम की ओर देखा।

विलियम की आँखें होतीं, तो ज़रूर ही वह इस देखने का

अर्थ समझना; पर, उसे लुइसी का अभिप्राय मालूम न हो सका। हँसते ही हँसते उसने कह दिया—"तुम्हीं मुझे प्यार कर सकोगी या नहीं यह कौन कह सकता है ?"

"क्यों ?" उछल कर लुइसी दूर खड़ी हो गयी—"क्यों ? इसका मतलब क्या विलि ? तुम कहना क्या चाहते हो ??"

"यही"—गम्भीर होकर विलि ने कहा—"यही कि किस रूप-गुण पर लुइसी मुझे प्यार कर सकेगी ?"

"रूप-गुण ही प्यार के ठेकेदार हैं विलि ? यह तो बहुत ओछे विचार हैं ! फिर, तुममें क्या नहीं है ?"

"कुछ भी नहीं। सब कुछ होते हुए भी मेरे पास कुछ नहीं है, चमकती हुई, ज्योतिर्मयी दो आँखों के न रहने के कारण ! नहीं जानता, इनके बिना........"

"छिः ! तुम ऐसी बातें न कहो विलि ! मुझे दुख होता है। मैं जाती हूँ।"

सचमुच ही, उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना, लुइसी, उठकर कमरे से बाहर निकल गयी। विलियम ने कान लगाकर सुना, उस कमरे में लुइसी नहीं थी। पहले ही की तरह वह अकेला रह गया, अपने विचारों और चिन्ताओं में डूबा हुआ।

सन्ध्या बीत चुकी थी। रात्रि का अन्धकार धीरे-धीरे फैल रहा था। विलियम चुपचाप बैठा रह गया।

८

असमञ्जस

लुइसी, विलियम के कमरे से निकलकर बाहर आयी तो उसे मालूम पड़ा कि वह कितना झूठ बोल आयी है। अब तक—इस समय के कुछ क्षण पहले तक—वह विलियम को प्यार करती थी। बचपन से प्यार करती आ रही थी; प्यार के उस प्रवाह में आज तक कोई बाधा न पड़ी थी। उसकी गति रुद्ध न हुई थी। आज सहसा एक प्रबल आघात ने उसके प्रवाह की गति रोक दी। यह बात नहीं थी कि इस समय के पहले, लुइसी को यह न मालूम हो कि विलियम अन्धा है। उसे सब कुछ मालूम था, राई-रत्ती भर बात भी उससे छिपी न थी; पर, विलियम का अन्धत्व आज के पहले कभी ऐसा विभीषिकामय रूप धारण करके उसके सम्मुख उपस्थित न हुआ था। विलियम की दृष्टिहीनता आज के पहले उसके निकट घृणा का नहीं, दया और करुणा का कारण थी; आज पहले-पहल विलियम ने ही उसे बताया कि सचमुच ही आँखों के बिना वह कितना बदसूरत मालूम पड़ता है, कितना

वीभत्स! आज तक विलियम की आँखों का अभाव उसके हृदय में एक पीड़ा की सृष्टि करता था; वह सृष्टि नवीन रूप धारण करके आज घृणा के रूप में परिवर्तित हो गयी। यह घृणा स्वयं विलियम ने ही तो उसके हृदय में उत्पन्न कर दी है!

संसार के निकट अपने को निरपराध साबित कर देने पर भी, अपराधी के लिए, स्वयं अपने निकट अपने को निरपराध साबित कर देना, ज़रा मुश्किल होता है। किन्तु, मुश्किल को आसान के रूप में देखने का, शायद, मानव-स्वभाव है। मन को भी किसी न किसी प्रकार समझाने का, उसे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न मनुष्य करता ही है। लुइसी ने भी अपने मन को तसल्ली दी—"यह अपराध तो विलियम का ही है। कब मैंने यह बात सोची थी? उसने तो स्वयं ही ऐसी बातें कह कर मेरे हृदय में एक नयी हलचल पैदा कर दी है?"

लुइसी ने सोचा—"विलियम क्या समझता है? ओफ़! उसकी यह भ्रान्त धारणा, उसे किस ओर ले जायगी? मैं उसे प्यार करती थी ज़रूर! मगर, क्या मालूम था कि प्यार करने का अर्थ इतना बुरा हो जायगा? क्यों एक निर्मूल धारणा उसके हृदय में जमने दी जाय? क्यों एक आशा-लता को उसके हृदय में जड़ पकड़ने दिया जाय? आगे चलकर तो यह

और भी दुःखद, और भी पीड़क हो जायगी। यह भ्रम जितनी जल्दी दूर कर दिया जाय उतना ही अच्छा।"

लुइसी उत्तेजित हो उठी। दोनों हथेलियाँ रगड़ती हुई वह ज़ोर से कहने लगी—"सचमुच ही विलि! तुम भूले हो। तुमने भयानक गलती की है। वह एक सहानुभूति थी, समवेदना थी, जिसे तुमने प्यार समझा है। तुम्हारी यह गलती तुम्हें समझानी होगी, यह भ्रम दूर करना होगा। नहीं तो, न जाने यह भ्रम कितना अनर्थ करेगा। यह गलती तुम्हें किस ओर ले जायगी।"

दिन भर का काम समाप्त करके थकी हुई नोरा, धीरे-धीरे, घर लौट रही थी। लुइसी उसे देख न सकी; पर, उसने लुइसी की सारी बातें सुन लीं। उसके मन में कष्ट हुआ। हाय! केवल दो आँखों के लिए ही न आज सारा संसार मेरे विलि का तिरस्कार कर रहा है!

बातें नोरा ने सुन लीं जरूर; मगर, वह कुछ समझ न सकी। नोरा को अपने सामने देखकर लुइसी भी घबरायी। वह आँख बचा कर निकल जाना चाहती थी; पर, नोरा ने पुकार लिया—"लुइस, कहाँ चली जा रही है इतनी जल्दी-जल्दी?"

"घर जा रही हूँ। तुम्हारे ही यहाँ आयी थी। देर हो

गयी है।" लुइसी किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाकर भागना चाहती थी।

नोरा ने कहा—"लेकिन, यहाँ अँधेरे में खड़ी होकर तू विलि को उपदेश क्या दे रही थी ?"

लुइसी घबरा गयी। नोरा ने कहा—"कोई बात नहीं बेटी, तू मुझसे सच्ची-सच्ची बातें बता दे। मैं किसी से न कहूँगी।"

"किसी से नहीं ? विलि से भी ??"

"ना।"

"अच्छा, तब सुनो। लुइसी ने अपने मन की सारी बातें खोलकर नोरा से कह दीं। बोली—"यह सब है, फिर भी मेरे हृदय में विलि के प्रति ममता है। तुम उससे कुछ कहना मत।"

"न कहूँगी।"

नोरा ने घर की ओर पैर बढ़ाया। लुइसी भी भागना चाहती थी। उस समय दोनों विकल थीं, घबरायी थीं, असमञ्जस में पड़ी थीं। देखते ही देखते, दोनों अन्धकार में अलग-अलग हो गयीं।

९

स्नेहमयी

नोरा आयी, मगर देर से। विलियम अकेला बैठा-बैठा ऊब रहा था। एकान्त में—दुःस्वप्नों की तरह—मनुष्य के हृदय में अनेक प्रकार की निरर्थक भावनाएँ चक्कर लगाया करती हैं। यह अवस्था असह्य होती है। उस हालत में और भी, जब मनुष्य ने स्वयं ही अपने हृदय में कोई वेदना छिपा रक्खी हो।

कमरे में घुसकर, थकी हुई नोरा, विलियम के पास ही एक कुर्सी खींचकर बैठ गयी। हाथ का झोला उसने मेज़ पर पटक दिया। अनेक छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें इधर-उधर बिखर गयीं। मुस्नाकर नोरा ने कहा—"विलि! बेटा!! आज बड़ी देर हो गयी। मैं सोच रही थी कि मेरा विलि घबरा रहा होगा! क्यों?"

"सचमुच ही माँ"—विलियम ने दुलार भरे स्वर में, नोरा के समीप खिसककर कहा—"अकेले बैठे-बैठे तबीयत ऊब जाती है। आँखों का अभाव उस समय और अधिक

दुख देता है, जब मैं अपने को अकेला पाता हूँ। थोड़ी देर हुई, लुईसी आयी थी। अभी तो गयी है। वह न आ जाती तो मैं बहुत अस्थिर हो जाता।"

नोरा ने विलियम के सिर पर प्यार से हाथ फेरा। बोली—"तब कहो! इसीसे तुम चुपचाप बैठे हो! नहीं तो, अब तक न जाने कितना ऊधम मचा चुके होते तुम!!"

विलियम हँसा। बोला—"जाने दो माँ! लेकिन यह तो बताओ, आज तुम्हें इतनी देर कहाँ हो गयी?"

"ओह!"—नोरा बोली—"वह एक पूरा क़िस्सा ही है विलि! तुम्हें फिर सुनाऊँगी। इस समय भूख लगी होगी, कुछ खा लो।"

नोरा ने मेज़ पर खाना चुन दिया। माँ-बेटा बैठकर भोजन करने लगे।

नोरा ने कहा—"आज जब मैं उस गाँव से लौट रही थी, नदी के किनारे-किनारे, तो देखा, एक बड़ी सुन्दर लड़की नदी के किनारे, एक पेड़ की छाया में बैठी हुई थी। बाल उसके खुले हुए थे, आँखें भीगी हुईं, मुँह सूखा हुआ। मुझे कौतूहल हुआ। मैं उसके पास गयी। देखा, सचमुच ही वह रो रही है। किसी बड़े कष्ट में है।

"विलि, आज हमारे 'मिशन' की पवित्रता नष्ट हो गयी

है। जिस पवित्र उद्देश्य को लेकर यीसू के अनुयायियों ने यह 'मिशन' चलाया था, आज उसे हमने खो दिया है। हम भटक गए हैं। गलत रास्ते पर जा रहे हैं। न जाने हमारी यह गति कहाँ जाकर रुकेगी ?

"हम अच्छे हैं" इसका यह अर्थ कभी नहीं होना चाहिए कि "तुम बुरे हो।" हम अच्छे हैं, सम्भव है, तुम भी अच्छे हो। अच्छाई की परिभाषा तो बहुत उदार होनी चाहिए। इस सङ्कीर्णता में तो अच्छाई अँट ही नहीं सकती।

"हमारे प्रचारकों में आज यही भाव आ गया है। वे यीसू की अच्छाई बतलाने के पहले कृष्ण की बुराई बतलाते हैं। यह भाव घातक है। इस प्रकार हम कभी दूसरे की सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सकते। लोग यीसू को समझने में गलती कर रहे हैं और यह हमारे हक़ में कभी अच्छा नहीं हो सकता।

"मुझे अपने समीप देखकर वह लड़की घबरायी। मैं झटपट उसके पास चली गयी और उससे बोली। उसका हालचाल मैंने पूछा। वह तो सहानुभूति की भूखी थी। प्यार भरी मेरी बातें सुनकर ख़ूब रोयी। अपना सारा दुखड़ा बयान कर गयी। देखा, उसका मन ईश्वर के प्रति घोर विद्रोही हो उठा है। मैंने उसे यीसू की बात बतायी। उसे कुछ शान्ति मिली, विश्वास हुआ। वह आकर्षित हुई। मेरी बातों को उसने

ध्यान से सुना। मुझे मालूम पड़ा, वह यीसू पर ईमान लावेगी, ईसाई बनेगी।"

भोजन समाप्त हो गया था। माँ-बेटा मेज़ पर से हट गए। विलियम ने पूछा—"वह कौन है माँ? कहाँ की रहने वाली है? उसके और कोई है या नहीं?"

"नहीं, कोई नहीं।" नोरा ने कहा—"यहीं की एक ग़रीब लड़की है; पर, है बड़ी ख़ूबसूरत और पढ़ी-लिखी। हिन्दुस्तान के देहातों में पढ़ी-लिखी औरतें बहुत कम मिलती हैं।"

"वह ईसा को मानेगी माँ!"—विलियम ने कहा—"क्रिश्चियन-धर्म स्वीकार करेगी?"

"क्यों न करेगी बेटा?"—नोरा बोली—"भटका हुआ सारा संसार ही एक न एक दिन ईसा के सामने सिर झुकावेगा।"

विलियम ने नोरा की बात सुन ली। कुछ उत्तर न दिया। क्षण भर चुप रहकर उसने एक ऊँची साँस ली। बोला—"अब मेरी आँखें अच्छी न होंगी माँ? अब मैं कुछ देख न सकूँगा?"

नोरा इस बात का क्या उत्तर देती? सूनी आँखों से वह आसमान की ओर देखने लगी। कमरे में सन्नाटा छा गया।

१०

निशीथ के अंचल में

ऊपर,—नीले आसमान में—चमकता हुआ चन्द्रमा, और नीचे, ताल-ताल पर थिरकती हुई नदी की चञ्चल लहरें, दोनों किनारों पर सिर तानकर खड़े हुए लम्बे-लम्बे शाल के वृक्ष और दूर तक फैली हुई हरियाली !!! निशीथ की नीरव-निर्जनता के साथ मिलकर यह दृश्य कितना आकर्षक, कितना मादक हो उठा था ?

लहरों के साथ क्रीड़ा करती हुई नाव मन्थर गति से बहती जा रही थी। रात कुछ अधिक हो आयी थी। अमरनाथ के साथ सब लोग भीतर केबिन में सो गये थे। माँझियों की आँखें भी नींद से अलसायी हुई थीं। वसन्त ही केवल, अपने दोनों पैर नाव से बाहर लटकाए हुए, अपलक-आँखों से, विभावरी का यह सौन्दर्य निहार रहा था। लहरें आ-आकर उसके पैरों को चूम जाती थीं, उसके शरीर को सिहरा जाती थीं, नयी-पुरानी अनेक स्मृतियों को जगा जाती थीं।

नाव बहती जा रही थी। तट पर कितने दृश्य आते और देखते ही देखते इतनी दूर हो जाते—जहाँ आँखों की गति रुद्ध हो जाती है। तट पर बसे हुए कितने ही गाँव आते और अदृश्य हो जाते। घरों में टिमटिमाते हुए दीपक दूर से वसन्त की आँखों में जगमगा उठते, जाँता पीसकर गीत गाती हुई देहाती रमणियों की क्षीण ध्वनि उसके कानों में गूँज उठती, वह पागल होकर सब देखता-सुनता चला जा रहा था।

वसन्त का जीवन दुखों और पीड़ाओं का इतिहास था। एक साँस में, वह उनकी पुनरावृत्ति कर गया, तो, उसे आज की घटना आश्चर्य-सी, विस्मय-सी जान पड़ी। उसने सोचा—"भाग्य का यह कैसा खेल है? विधाता का यह कौन विधान है? प्रारब्ध की लहरें मुझे किधर ले जा रही हैं? नहीं जानता, ये मुझे कब कहाँ ले जाकर शान्त होंगी। विधाता को और कितना निष्ठुर खेल मेरे जीवन के साथ अभी खेलना है, यही कौन कह सकता है!! जीवन के सुख की ये घड़ियाँ कब तक टिकेंगी? यह रहस्य, मेरे निकट तो सदैव रहस्य ही बना रहेगा।

इधर, वसन्त अपनी भावनाओं में तन्मय था, उधर बिन्दु की आँखों में नींद न थी। वह केबिन में एक ओर सिमटी हुई, खिड़की से, रात्रि का शान्त-सौन्दर्य निरख रही थी। उसके

हृदय में भी कल्पनाएँ थीं, आशाएँ थीं, अरमान थे। वह सोच रही थी कोई ऐसी बात, जिसे वह स्वयं ही कुछ न समझ पाती थी,—एक स्वप्न-सी, पहेली-सी बात!

वसन्त अनमना होकर बैठा था, विन्दु एक ओर सङ्कोच से सिकुड़ी हुई थी। दोनों के बीच में कुछ विशेष अन्तर न था। केवल एक टीन का पत्तर था, जो उन दोनों को अलग किए हुए था। वसन्त ने झुककर नदी से एक चुल्लू जल उठाया। उसे पी गया। फिर उठाया, फिर पी गया। इसी प्रकार कई चुल्लू जल वह पी गया। विन्दु चुपचाप उसे देखती रही।

एकबार, असावधानी से नाव कुछ अधिक झुक गयी और वसन्त जल में जा गिरा। छप् से एक आवाज़ हुई; फिर, सब शान्त हो गया। विन्दु यह देख रही थी। वह घबरा गयी। दौड़कर बाहर निकल आयी। माँझी उस समय भी तन्द्रा में थे।

वसन्त तैर रहा था। दो हाथ मारकर उसने झट से नाव को पकड़ लिया। नाव एकबार ज़ोर से हिल उठी और वसन्त फिर नाव पर था। उसके सारे कपड़े भीग गए थे। विन्दु झटपट अन्दर चली गयी और कुछ सूखे कपड़े उठा लायी। बोली—"गीले कपड़े उतार दीजिए न!"

"हाँ !" वसन्त लज्जित होकर केवल विन्दु की ओर देखता रहा।

विन्दु ने फिर अपनी बात दोहरायी। वसन्त ने कहा—"इन्हें निचोड़ लेता हूँ। अभी सूख जायँगे।"

"नहीं, सर्दी लगेगी।" विन्दु ने कहा।

"सर्दी ? हहह !!"—वसन्त ने कहा—"सर्दी मुझे आज तक कभी लगी भी है कि अब लगेगी ? जाने दीजिए, बड़े भैया के कपड़े मैं क्या पहनूँ ?"

"बड़े भैया क्या दूसरे हैं ? आप न पहनियेगा तो मैं जाकर उन्हीं को जगा दूँगी।"

विन्दु की बातों से वसन्त को आश्चर्य हो रहा था। अपरिचित पुरुष से इस प्रकार सङ्कोचहीन भाषा में बात-चीत करने वाली यह लड़की उसे अद्भुत सी मालूम पड़ रही थी। अभी वसन्त ने वह दुनियाँ देखी कहाँ थी, जहाँ की हवा में विन्दु पली थी और जहाँ के विचार-व्यवहारों में उसके हृदय और संस्कृति का निर्माण हुआ था ? विन्दु की बात सुनकर वसन्त ने कहा—"नहीं, उन्हें सोने दीजिए। मैं पहन लेता हूँ।"

एक धोती वसन्त ने पहन ली। अपने कपड़े निचोड़ कर

फैला दिए। अँगोछे से शरीर पोंछ लिया। विन्दु ने पूछा—"यह कैसे हो गया ?"

"क्या ?" वसन्त शायद कुछ सोचने लगा था, विन्दु की बात सुन नहीं सका। बोला—"क्या ?"

"यही।" विन्दु ने जल की ओर इशारा किया।

"ओ !" वसन्त ने कहा—"योंही, असावधानी से। ध्यान उचट गया था, नाव कुछ अधिक झुक गयी। मैं सँभाल नहीं सका। बस।"

थोड़ी देर तक दोनों ही चुप रहे। वसन्त बैठा था, विन्दु खड़ी थी। हवा के हलके थपेड़े शरीर में कम्पन उत्पन्न कर रहे थे। रात अधिक बीत गयी थी।

वसन्त ने कहा—"रात बहुत बीत गयी। अब आप जाइए, सोइए न !"

"मुझे नींद नहीं आती।"

"क्यों ?"

"योंही।"

"अभी आप सोयी नहीं थीं क्या ?"

"ना।"

"सब लोग जाग ही रहे हैं ?"

"सभी सोए हैं, केवल मुझे ही नींद नहीं आयी।"

"लेकिन अब आनी चाहिए।"

"आवेगी।"

"तो फिर आप खड़ी क्यों हैं ? बैठ जाइए।"

"आप मुझे 'आप' क्यों कहते हैं ?"

"क्या कहूँ ?"

"जो सब लोग कहते हैं—बिन्दो।"

बिन्दु ने कहने को तो कह दिया; पर, उसे बड़ा सङ्कोच मालूम पड़ा। वह जल्दी से केबिन में चली गयी।

बसन्त आश्चर्य से उसकी ओर देखता रह गया।

——:०:——

११

जीवन-पथ पर

जोनाकी विकलता का अन्दाज़ कौन कर सकता है ? उसके दुखों का थाह कौन पा सकता है ? उसकी वेदनाओं की अनु-भूति किसे हो सकती है ? बेचारी अबोध बालिका !! संसार में जिसका अपना कोई नहीं, रक्षक कोई नहीं; सभी ठग, सभी वंचक, सभी निर्मम, निष्ठुर !! जिसके अरक्षित और निर्बल हाथों में यौवन का वैभव और जीवन की यह लम्बी यात्रा !! संसार का यह हिंसक-स्वरूप !!

पग पग पर जोना अभाव का अनुभव करती थी। पग पग पर उसे ठोकरें लगती थीं। चारों ओर उसे केवल अन्धकार ही दीख पड़ता था; अमावस का निविड़ अन्धकार, जिसमें अपने आपको देखना भी आसान नहीं होता। प्रकाश की एक किरन का भी उसे पता न था और ऐसी अवस्थामें उसे जीवन पथ पर अग्रसर होना था। ओः ! कितना दुस्तर, कितना कठिन !!

किन्तु, एक जगह खड़ा भी नहीं रहा जा सकता। चलना ही पड़ेगा। चाहे कोई रोकर चले या हँसकर। जोना भी चली।

कहाँ जायगी, किस पथ से जायगी, उसे कुछ मालूम न था; किन्तु, जब चलना ही है तो कहीं चलो। किसी ओर चलो। भय क्या है ?

संसार में चलने के लिए, या तो संसार के साथ चले, या संसार को अपने साथ चलावे। जो दोनों में से एक भी नहीं कर सकते, वे सफल यात्री नहीं कहे जा सकते। संसार उन्हें ठगता है, परास्त करता है, नीचे गिरा देता है। संसार के साथ चलने के लिए थोड़ी सी बुद्धिमानी भी चाहिए। भोलेपन और सरलता से यहाँ काम नहीं चलता, नहीं चल सकता।

ज्ञाना संसार को अपने साथ चला सकती थी ? अरे, वह तो निरी बच्ची थी ! वह संसार के साथ चल सकती थी ? ना, उसमें वह कौशल, वह बुद्धिमानी कहाँ थी, जिसकी संसार को जरूरत है ? वह नादान भोली लड़की तो संसार में ठोकरें खाने, अपदस्थ होने के लिए ही आयी थी।

वह संसार से ठगी जायगी, परास्त होगी, नीचा देखेगी; यही संसार का नियम है।

अन्धकार में अनेक विभीषिकाएँ देखती हुई वह आगे बढ़ी। उसका कोई लक्ष्य नहीं था, कोई पथ निर्दिष्ट नहीं था। उसे चलना था, इसी लिए चलती थी।

वह चौंक उठती थी। घबड़ा जाती थी। लौट जाने के लिए

उसका मन विद्रोही हो उठता था; पर हाय ! लौटने का भी तो कोई उपाय नहीं था । इस यात्रा में तो केवल चलना है; रुकना भी नहीं, विश्रान्ति भी नहीं । लौटने की क्या बात ?

जब मकान का कोई मालिक नहीं होता, तो सभी उसे अपना कहने का अधिकारी समझते हैं । जब धन का दावादार नहीं होता तो सभी उसे अपनी बपौती बताते हैं । यह संसार का स्वभाव है । जोना के लिए भी इस स्वभाव का उपयोग हुआ ही । रूप के लोभी कितने ही पतंग उसके चारों ओर मँडराने लगे । पर, एक बात है । एक पतंग होते हैं वे, जो रूप की माधुरी पर मुग्ध होकर अपने आपको निछावर कर देते, रूप की ज्वाला में जल मरते हैं;पर,ये पतंग मरना नहीं,मारना जानते हैं; जलना नहीं जलाना चाहते हैं । ये जलाते हैं, चूस लेते हैं ।

जोना सब सह सकती थी, रूप के लोभी इन पतंगों का आक्रमण उसे सह्य नहीं था । विह्वल होकर जब अपनी कातर आँखों से उसने चारों ओर देखा, तो, उसे दीख पड़ा कि इस अन्तहीन संसार-सागर से उबारने वाला उसका अपना कोई नहीं है । सहायता उसको कोई न करेगा,अगर हो सकेगा किसी से, तो वह उसे और गहरे जल में ढकेल जरूर देगा । यहाँ तो केवल अपने ही हाथों का सहारा और भरोसा है;

किन्तु, वे हाथ—हाय !—कितने दुर्बल, कितने शक्तिहीन, कितने असमर्थ हैं !!!

जोनाकी आँखों में अँधेरा दीख पड़ा। उसे एक बार ईश्वर की याद आयी। पर,घृणा से उसने मुँह फेर लिया। यह केवल संस्कार है। अगर, ऐसी दशा में भी ईश्वर काम नहीं आता, सहायता नहीं करता तो फिर वह है ही क्यों ? संसार को उसकी जरूरत ही क्या है ? केवल पापों पर पुण्य की कलई करने के लिए ? असत्य के ऊपर सत्य का आवरण डालने के लिए ? अत्याचारों पर सहानुभूति का मुलम्मा चढ़ाने के लिए ? ठगों, धूर्तों, वंचकों और पापियों की रोज़ी बरकरार रखने के लिए ??? छिः !!

बेर डूब रही थी। लोग अपने-अपने घरों में दिया-बत्ती कर रहे थे। मगर, जोना के घर में अँधेरा ही था। अँधेरा जिसके जीवन के साथ ही जुड़ गया है, उसके घर में प्रकाश हुआ तो, न हुआ तो !!

जोना फूस के छप्पर के नीचे जाँता के पास चुपचाप बैठी थी। गोधूलि की धूमिलता उसके चारो ओर फैल गयी थी। वह अनेक बातें सोच रही थी। उसके माथे पर चिन्ता के शिकन पड़े हुए थे। उसकी उँगलियाँ धीरे-धीरे जमीन की मिट्टी कुरेद रही थीं।

सहसा एक छायामूर्ति ने आँगन में प्रवेश किया। जोना का ध्यान उधर न था। मूर्ति धीरे-धीरे उसी की ओर अग्रसर हो रही थी।

पास पहुँचकर छाया ने धीरे से पुकारा—"जोना!"

जोना चौंक उठी। सन्ध्या के अन्धकार में छिपते हुए आने वाले आगन्तुक को देखकर उसका शरीर काँप उठा। उसने कहा—"कौन है?"

"मैं हूँ मुकुन्द!"—आगन्तुक बोला—"मुझे पहचानती नहीं जोना?"

"मुकुन्द भैया!"—जोना मुकुन्द का नाम सुनकर काँप उठी। फिर भी सँभलकर बोली—"पहचानूँगी क्यों न भैया? अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ता।"

"क्यों इतना अँधेरा कर रक्खा है?"

"योंही, जिन्दगी में ही अँधेरा हो रहा है। घर की बात कौन पूछे?"

"मुझसे यह अँधेरा देखा नहीं जाता जोना, मैं इसे दूर करूँगा। तुम्हारे हृदय के अन्धकार में अपने प्राणों का दीपक जलाऊँगा।"

यह कविता सुनकर जोना सिहर उठी। बोली—"इस वख़्त तुम किस लिए आये हो मुकुन्द भैया?"

"योंही, कुछ बातें करनी हैं।"

"बातें कल कर लेना। आज मेरी तबियत ठीक नहीं है।"

"तबियत ठीक नहीं है? अरे, क्या हो गया है तुम्हें? देखूँ?"

मुकुन्द, जोना के पास ही, जमीन पर बैठ गया। जोना का हृदय काँपने लगा। उसे अपनी असमर्थता पर, शक्तिहीनता पर, रुलाई आने लगी। हाय, इस विपत्ति में आज उसका सहायक कोई नहीं है!!

मुकुन्द ने जोना की ओर हाथ बढ़ाया—"लाओ देखूँ, तुम्हें क्या हुआ है जोना!"

जोना दूर हट गयी। बोली—"देखो, मुझे तङ्ग मत करो। मुकुन्द, मुझे कुछ नहीं हुआ है। तुम यहाँ से चले जाओ। मुझे अकेली रहने दो।"

"जाऊँगा जोना"—मुकुन्द ने कहा—"मगर, मैं जिस लिए आया हूँ, मेरी वह बातें सुन लो। अपनी बातें तुम्हें सुनाए बिना यहाँ से मैं न जाऊँगा।"

"तब कहो"—जोना बोली—"तुम्हें जो कहना है, वह झटपट ही कह डालो।"

"जोना, उस समय की बातें क्या तुम भूल गयीं, जब हम लोग बच्चे थे और अनेक प्रकार के खेल खेलते, सदा साथ

रहते, झूलना झूलते और आपस में कितनी ममता, कितनी मुहब्बत, कितना प्यार रखते थे! आह, आज भी उन दिनों की सुनहली याद बनी हुई है। क्या तुम्हें वे दिन भूल गए जोना ?"

"तुम्हें और क्या कहना है ?" जोना ने पूछा।

"तुम इतनी निष्ठुर कैसे हो गयीं जोना! पहले तो तुम ऐसी न थीं। मै आज भी तुमको उसी पुराने रूप में देखना चाहता हूँ। आज भी तुमसे वही मुहब्बत और प्यार पाने की आशा रखता हूँ। तुम्हें पाकर मेरा जीवन........जोना!"

जोना आग की तरह लहक उठी। बोली—"यही सब कहने के लिए तुम इस घड़ी यहाँ आये थे मुकुन्द ? तुम्हें लाज नहीं आती ? इस प्रकार एक असमर्थ को क्यों तङ्ग करते हो ? क्यों मुझे कुढ़ाते हो ? अरे, सुख से मुझे तुम लोग मरने देना भी नहीं चाहते ?"

आवेग की अधिकता से जोना रो पड़ी। बोली—"मुकुन्द ! तुम मेरे भाई हो। इस घड़ी ऐसी बातें न बोलो। मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।"

सचमुच ही, जोना मुकुन्द के पैरों के पास झुक गयी। किन्तु, मुकुन्द के भावों में कोई परिवर्तन न हुआ। उसके हृदय के आसुरी भाव जाग उठे। उसने जोना के दोनों हाथ

पकड़ लिए। बल पूर्वक अपनी ओर खींचता हुआ बोला—"इस रोने-धोने से कुछ न होगा जोना! तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी। चाहे, रोकर मानो या हँसकर। समझीं !!"

जोना इस समय खौल रही थी। उसकी जिन आँखों से आँसू निकलते थे, उन्हीं से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने एक झटका देकर मुकुन्द से अपना हाथ छुड़ा लिया। वह दरवाज़े की ओर दौड़ी। मुकुन्द ने पीछा किया। दरवाज़े पर जाकर उसने जोना को पकड़ ही लिया। पर, बिजली की तरह चमक कर जोना ने मुकुन्द की छाती में एक लात लगायी। मुकुन्द धरती में लोट गया। जोना तीर की तरह अँधेरे में घुस गयी।

रास्ते में आकर भी जोना के पैर रुके नहीं। वह दौड़ती जाती थी और सोचती जाती थी कि संसार में उसके लिए कोई निरापद जगह भी है कि नहीं? घर तो उसके लिए नितान्त अरक्षित स्थान है। वह कहाँ जाय? कहाँ उसकी रक्षा होगी? उसे त्राण मिलेगा?

सहसा, उस मेम की बात जोना को याद आयी, जो, आज से कई दिन पहले—नदी तीर पर—उसे मिली थी। वहीं आशा की कुछ ज्योति जोना को दीख पड़ी। उसने मेम के घर का ही रास्ता पकड़ा।

१२

गृह-दाह

गलियों में सन्नाटा छा गया था। लोगों ने घर के दरवाज़े बन्द कर लिए थे। जहाँ तहाँ दीपक अपने मन्द प्रकाश से टिमटिमा रहे थे। अन्धकार की भयङ्करता उससे और भी बढ़ गयी थी।

लालगञ्ज की बस्ती कुछ अद्भुत-सी थी। वह न बिलकुल शहर थी, न एकदम देहात; इन दोनों का एक मिश्रण-सा थी। लालगञ्ज दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो वह जिसे हम देहात कह सकते हैं। जहाँ मिट्टी के कच्चे, गिरे-पड़े घर हैं, जहाँ के रहने वाले मलिन, निर्धन और दुर्बल हैं और जहाँ दरिद्रता अपना नग्न-ताण्डव दिखला रही है। दूसरा भाग शहर कहा जा सकता है। उस भाग में अच्छे-अच्छे पक्के दुमञ्जिले, साफ़-सुथरे मकान हैं, उसमें मोटे-ताज़े सफेदपोश भले आदमी रहते हैं और वहाँ लक्ष्मी का निवास है।

जोना इन्हीं कच्चे मकानोंवाले भाग को पार करके किनारे वाले एक पक्के मकान के सामने आ खड़ी हुई। उसका

हृदय अब भी काँप रहा था। बढ़कर जञ्जीर खटखटाने का साहस उसे न हुआ। वह चुपचाप दरवाज़े पर खड़ी रही, डरती हुई, काँपती हुई।

किन्तु, वहाँ खड़ा रहना भी ख़तरे से खाली न था। जोना ने साहस किया। वह आगे बढ़ी। उसने जञ्जीर को छुआ। खटखटा न सकी। भय ने हाथ खींच लिया। उसने फिर साहस किया और अब की बार धड़कते हुए हृदय से जञ्जीर खटखटा ही दी।

क्षण भर सन्नाटा रहा फिर किवाड़ खोलने की आवाज़ आयी। किवाड़ खुल गए और जोना ने नोरा को अपने सामने खड़ी पाया। नोरा को देखकर जोना को कुछ ढाढ़स भी हुआ और रुलाई भी आयी। विपत्ति में सहारा पाकर मनुष्य को स्वभावतः रुलाई आ जाती है। जोना, नोरा के पैरों पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी।

नोरा कुछ समझ न सकी। घबरा गयी। जोना को उसने हाथ पकड़कर उठा लिया। बोली—"तुम कौन हो? क्यों रो रही हो? आओ, मेरे साथ भीतर चलो।"

आवेग कुछ शान्त हुआ तो जोना चुप हुई। नोरा के साथ वह अन्दर गयी। जाकर उसने देखा, सारा सामान जहाँ-तहाँ बिखरा पड़ा है। सामान बाँधा जा रहा है। उसे

मालूम पड़ा, मानो ये लोग कहीं जाने की तैयारी कर रहे हैं।

नोरा ने प्रकाश में जोना को पहचाना। आश्चर्य करती हुई बोली—"अरे, बेटी, तू इस समय यहाँ कैसे? तुझ पर कौन दुख आ पड़ा है? तेरी यह क्या हालत है?"

जोना ने धीरे-धीरे आज की घटना नोरा को सुनायी। सुनकर नोरा ने घृणा से मुँह फेर लिया। सहानुभूति के आँसू उसकी आँखों में भर आये। बोली—"हम लोग तो आज यहाँ से जा रहे हैं बेटी! हमारी बदली ताजपुर को हो गयी है।"

नोरा एक भली औरत थी। वह ईसाई-धर्म की प्रचारिका थी। यद्यपि स्वयं वह घर की ख़ुशहाल थी; पर,फिर भी धर्म-प्रेम के कारण वह 'क्रिश्चियन मिशन' की अवैतनिक कार्यकर्ता थी।

नोरा की बातें सुनकर जोना घबरा गयी। अधीर होकर उसने कहा—"तो मेरा क्या होगा मेम साहब? दुनियाँ में मेरा कोई नहीं है। मेरी रक्षा कौन करेगा?"

"तुम भी हमारे साथ चलना। चलोगी?" नोरा ने पूछा।

"क्यों न चलूँगी मेम साहब, जहाँ आप ले चलेंगी वहीं चलूँगी; मगर, इस जगह अब एक क्षण भी न रहूँगी। यह क्या आदमियों के रहने की जगह है?"

"तब ठीक है। आओ, मैं अपने लड़के से तुम्हारा परिचय करा दूँ। फिर, हम लोग सभी मिलकर चलने की तैयारी करें।" नोरा ने कहा। वह जोना को साथ लेकर कमरे की ओर चली।

कमरे में एक पलँग पर विलियम लेटा हुआ था। उसका जीवन नितान्त रसहीन, कर्महीन था। वह न पढ़-लिख सकता था, न खेल सकता था, न कोई काम करने में माँ का हाथ ही बटा सकता था। केवल बैठा रहना, केवल सोचते रहना, बस यही उसका काम था।

"विलि !" नोरा ने स्नेह भरे स्वर में पुकारा।

"क्या है माँ !"

"क्या कर रहा है ?"

"क्या करूँगा माँ? क्या करने लायक हूँ मैं? तुमने सामान बाँध लिया ?" विलियम ने दुख से भरी एक लम्बी साँस ली।

नोरा ने विलियम के हृदय की व्यथा समझी। वह अपना दुख पी गयी। बोली—"मैंने उस दिन जिस लड़की की बात तुमसे कही थी विलि, आज वह यहाँ आयी है।"

"यहाँ आयी है ? क्यों ? कहाँ है वह ?"

"यहीं; तुम्हारे सामने। तुमसे परिचय करना चाहती है।"

"मुझसे ? ह-ह-ह, मुझसे कोई क्यों परिचय करेगा माँ, अन्धे आदमी से ?"

नोरा की ओर जोना ने देखा। नोरा बोली—"देख बेटी, ये तेरे भाई हैं, और मैं तेरी माँ हूँ। आज से तू मेरे परिवार की हो गयी।"

कृतज्ञता से जोना ने सिर झुका लिया। वह भला क्या उत्तर देती ?

विलियम ने कहा—"मैं तुम्हें देख नहीं सकता; पर, माँ ने तुम्हारे बारे में मुझसे बहुत कुछ कहा है। मुझे तुमको पाकर बड़ी ख़ुशी हुई है। लेकिन, यह तो बताओ, तुम्हारा नाम क्या है भला ?"

"जोना।"

"जोना ? नहीं, मैं तो तुम्हें जेनी कहूँगा। क्यों ?"

"जो चाहिए कहिए। आपने मेरी रक्षा की है, मुझे शरण दी है। आपका यह उपकार मैं जन्म भर न भूल सकूँगी।"

* * *

जब चलने का समय आया तो जोना ने कहा—"माँ, एक काम मेरा शेष रह गया है। आप आज्ञा दें तो मैं उससे निबटती आऊँ।"

नोरा की आज्ञा लेकर जोना चली गयी, अपनी झोपड़ी

के पास। जेब से एक दियासलाई निकाल कर उसने झोपड़ी में लगा दी। फूस की टट्टी भक्-से लहक उठी। आँखों में आँसू भरकर एकबार जोना ने उसे देखा, फिर नोरा के घर की ओर चल पड़ी।

* * *

दूसरे दिन सवेरे उठकर गाँववालों ने देखा कि जोना की झोपड़ी की जगह राख की ढेर लगी हुई है। वहाँ उसकी कोई स्मृति भी शेष नहीं रह गयी है।

लोगों ने कोशिश की, पर कोई जोना का पता न लगा सका।

१३

कोलाहल

शहर के वैभव-विलास, सभ्यता और आडम्बर के प्रकाश ने वसन्त की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर दिया। सहसा उसे यह सब बर्दाश्त न हो सका। एकबार उसने आँखें मीच लीं, फिर, आश्चर्य से अवाक् होकर चारो ओर देखने लगा। इतने बड़े-बड़े मकान, इतनी सजावट, इतनी बिजली-बत्तियाँ, इतनी मोटरें, गाड़ियाँ, इक्के, साइकिलें—ओफ़!—यह सब इतना कहाँ से आता है? वसन्त ने हरएक चीज़ को एकबार, दो बार, अनेक बार देखा, बच्चों की तरह—'यह क्या है, वह क्या है'—कहकर सब कुछ पूछा, बंसी को अस्थिर कर दिया। उसकी इस अनभिज्ञता पर सभी को हँसी आयी, सभी को कौतूहल हुआ, केवल विन्दु ही अकेली गम्भीर बनी बैठी रही। उसने कुछ नहीं कहा।

देखते-देखते, वसन्त की आँखों को भी यह सब देखने का अभ्यास हो गया। अब न उसके मन में कौतूहल था, न

नवीनता के प्रति आकर्षण। नयी चीज़ें अब पुरानी पड़ गयी थीं और वह शहर में सब कुछ देख चुका था।

अमरनाथ के विशाल भवन में एक साफ़-सुथरी कोठरी वसन्त को मिली। लाइब्रेरी का काम उसे सौंपा गया। वह उसी में पढ़ा करेगा और अमरनाथ की सहायता किया करेगा।

बसन्त को यह सब सपना-सा मालूम हुआ। क्या सच-मुच ही यह सपना नहीं है? इतने सुख की कल्पना भी तो कभी वह नहीं कर सका था। ओफ़!

वसन्त ने अमरनाथ का विशाल-भवन देखा, सुन्दर परि-वार देखा, उत्तम विचार-व्यवहार भी देखा। वह जो कुछ भी देखता था उससे उसका विस्मय बढ़ता ही जाता था। उसे क्या मालूम था कि दुनियाँ में ऐसे लोग भी होते हैं!

वसन्त ने बड़े सङ्कोच से अपना चार्ज लिया। धीरे-धीरे वह उस परिवार में बिलकुल हिल-मिल गया, एक हो गया।

* * *

एकदिन अमरनाथ ने लाइब्रेरी में वसन्त को बुलाया। वसन्त ने वहाँ जाकर देखा, सभा ही जुटी हुई है। बंसी भी है, कुमुदिनी भी है और विन्दु भी। वसन्त घबराया। आज

यह असमय पुकार कैसी हुई है? सामने जाकर वह खड़ा हो गया। अमरनाथ ने एक कुर्सी दिखाकर कहा—"बैठो।"

वसन्त बैठ गया। अमरनाथ ने पूछा—"क्या कर रहे थे?"

"पढ़ रहा था; एक मासिक पत्रिका की पुरानी फाइल मिल गयी थी।"

"तुम कुछ अङ्गरेज़ी क्यों नहीं पढ़ते? खाली ही तो रहते हो!"

"हाँ, अब पढ़ूँगा।"

"बंसी से थोड़ी-थोड़ी अङ्गरेज़ी सीखना शुरू करो। अभी तो तुम्हें बंसी कुछ दिन पढ़ा सकता है। क्यों बंसी?"

बंसी के उत्तर देने के पहले ही, कुमुदिनी बोल उठी—"कुछ दिन तो अभी मैं ही वसन्त को पढ़ा सकती हूँ।"

बंसी हँस पड़ा। कुमुदिनी और अमरनाथ भी खिलखिला उठे। विन्दु ने आँचल से मुँह छिपा लिया।

बात कही थी कुमुदिनी ने दिल्लगी में ही; मगर, वसन्त ने ज़िद पकड़ ली—"तब तो भाभी, मैं आप ही से पढ़ूँगा। बोलिए, कब से पढ़ायेंगी आप?"

"अरे बाबू, मुझे फुरसत कहाँ है? यों ही कह दिया था मैंने। बंसी बाबू पढ़ा देंगे तुम्हें। घबराते क्यों हो?"

"ना, अब मैं पढ़ूँगा तो आप ही से भाभी। आपने कहा क्यों?"

अमरनाथ ने कहा—"ठीक ही तो कहता है, जब पढ़ाना ही नहीं था तो कहा क्यों? अब उचित तो यही है कि तुम जैसे बने वसन्त को पढ़ाना शुरू ही कर दो।"

आँख टेढ़ी कर के कुमुदिनी ने अमरनाथ की ओर देखा। बोली—"आपको जज कौन बनाता है? ज़बरदस्ती फैसला दिए देते हैं?"

अमरनाथ ने कहा—"तुम्हारे आँख दिखाने से मैं डर जाऊँगा? तुम्हारी क्या समझ है?"

फिर एकबार सब लोग हँसे। आख़िर कुमुदिनी ने वसन्त को पढ़ाना स्वीकार कर लिया।

* * *

दूसरे ही दिन से वसन्त की पढ़ाई नियम से चलने लगी। बीच-बीच में जब कभी अमरनाथ वहाँ पहुँच जाते तो वसन्त की पढ़ाई बड़ा भयङ्कर रूप धारण कर लेती थी।

वसन्त का नया जीवन इसी प्रकार हँसी-खुशी और आमोद-प्रमोद में बीतने लगा। वह प्रायः अपना अतीत जीवन भूलने-सा लगा।

१४

नयी-दुनियाँ

ताज़पुर आकर जेनी ने अपने को नयी दुनियाँ में पाया। अब वह पहले की जोना न रह गयी थी। अतीत की स्मृतियाँ कुछ ऐसी मधुर तो थीं नहीं, जिनकी रक्षा करने का वह प्रयत्न करती। उनका वेश बदल गया था, बोली बदल गयी थी, समाज बदल गया था, फिर विलियम के दिये हुए नाम का ही वह क्यों तिरस्कार करती? वह अब जोना नहीं, जेनी थी; सुख और शान्ति की खोज में भटकने वाली, जीवन-पथ की एक खोयी हुई यात्री! वह यात्री जिसकी यात्रा निरुद्देश्य और असफल होती है। भटकना ही जिसका उद्देश्य होता है और जिसे न किसी लक्ष्य पर पहुँचने की आशा होती है न आकांक्षा!!

जेनी की यह नयी-दुनियाँ बड़ी उलझनदार किन्तु आकर्षक थी। ताजपुर में आते ही झुण्ड की झुण्ड मेमें नोरा से मिलने के लिए आने लगीं। नोरा ने सबसे जेनी का परिचय कराया। जेनी को बड़ा सङ्कोच मालूम पड़ता था। उसे पढ़ी-

स्त्री मेमों से मिलने में, बातचीत करने में बड़ी झिझक मालूम पड़ती थी; पर, नोरा के कहने से उसे सब करना ही पड़ता था।

थोड़े ही दिनों में, जेनी, अपने नये समाज का रीति-रिवाज़ सब सीख गयी। अब उसे कोई झिझक न थी, कुछ सङ्कोच न था। सबसे, बड़े प्रेम और आदर से मिलती थी। दूसरी मेमें भी उसे बड़ा प्यार करती थीं। देखते ही देखते, वह इन लोगों में इतना घुल-मिल गयी कि उसे देखकर कोई पहिचान नहीं सकता था कि यह जेनी है।

जेनी का स्वभाव बड़ा भोला, बड़ा कोमल, बड़ा मिलनसार था। थोड़े ही दिनों में उसने सबको अपने वश में कर लिया। जोही जेनी से मिला, उसीको उसने मोह लिया। विलियम तो जेनी के स्वभाव पर मुग्ध था। जेनी के कारण ही उसके उदासीन जीवन में कुछ प्रसन्नता आ गयी थी। जेनी भी विलियम को बहुत मानती थी। उसके प्रति उसकी सहानुभूति आन्तरिक थी, उसका प्रेम निष्कपट था।

एक साधारण गृहस्थ के घर में जन्म लेकर भी जेनी ने असाधारण रूप पाया था। जैसा उसका रूप था, वैसे ही उसे गुण भी मिले थे। सब जगह ऐसी रूप-गुण-सम्पन्ना लड़कियाँ देखी नहीं जाती। मालूम पड़ता था, मानो विधाता

१४

नयी-दुनियाँ

ताज़पुर आकर जेनी ने अपने को नयी दुनियाँ में पाया। अब वह पहले की जोना न रह गयी थी। अतीत की स्मृतियाँ कुछ ऐसी मधुर तो थीं नहीं, जिनकी रक्षा करने का वह प्रयत्न करती। उसका वेश बदल गया था, बोली बदल गयी थी, समाज बदल गया था, फिर विलियम के दिये हुए नाम का ही वह क्यों तिरस्कार करती ? वह अब जोना नहीं, जेनी थी; सुख और शान्ति की खोज में भटकने वाली, जीवन-पथ की एक खोयी हुई यात्री ! वह यात्री जिसकी यात्रा निरुद्देश्य और असफल होती है। भटकना ही जिसका उद्देश्य होता है और जिसे न किसी लक्ष्य पर पहुँचने की आशा होती है न आकांक्षा !!

जेनी की यह नयी-दुनियाँ बड़ी उलझनदार किन्तु आकर्षक थी। ताजपुर में आते ही झुण्ड की झुण्ड मेमें नोरा से मिलने के लिए आने लगीं। नोरा ने सबसे जेनी का परिचय कराया। जेनी को बड़ा सङ्कोच मालूम पड़ता था। उसे पढ़ी-

लिखी मेमों से मिलने में, बातचीत करने में बड़ी झिझक मालूम पड़ती थी; पर, नोरा के कहने से उसे सब करना ही पड़ता था।

थोड़े ही दिनों में, जेनी, अपने नये समाज का रीति-रिवाज़ सब सीख गयी। अब उसे कोई झिझक न थी, कुछ सङ्कोच न था। सबसे, बड़े प्रेम और आदर से मिलती थी। दूसरी मेमें भी उसे बड़ा प्यार करती थीं। देखते ही देखते, वह इन लोगों में इतना घुल-मिल गयी कि उसे देखकर कोई पहिचान नहीं सकता था कि यह जेनी है।

जेनी का स्वभाव बड़ा भोला, बड़ा कोमल, बड़ा मिलनसार था। थोड़े ही दिनों में उसने सबको अपने वश में कर लिया। जोही जेनी से मिला, उसीको उसने मोह लिया। विलियम तो जेनी के स्वभाव पर मुग्ध था। जेनी के कारण ही उसके उदासीन जीवन में कुछ प्रसन्नता आ गयी थी। जेनी भी विलियम को बहुत मानती थी। उसके प्रति उसकी सहानुभूति आन्तरिक थी, उसका प्रेम निष्कपट था।

एक साधारण गृहस्थ के घर में जन्म लेकर भी जेनी ने असाधारण रूप पाया था। जैसा उसका रूप था वैसे ही उसे गुण भी मिले थे। सब जगह ऐसी रूप-गुण-सम्पन्ना लड़कियाँ देखी नहीं जातीं। मालूम पड़ता था, मानो विधाता

ने वरदान की तरह उसे इतना रूप, इतना गुण दे दिया हो !

पढ़ने का शौक जेनी को बचपन से ही था। माँ के सिवा, घर में उसके और कोई था नहीं और माँ ने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। इसी से, थोड़ा बहुत पढ़ लेने का मौक़ा उसे मिल गया था। नहीं तो, गाँव-गँवई की लड़कियों को पढ़ने-लिखने का अवकाश ही कहाँ मिलता है ? मिलता भी है, तो वे पढ़ायी कहाँ जाती हैं ? जो लोग अपढ़ हैं, नासमझ हैं, वे तो कहते हैं—घर-गिरिस्ती में पढ़ने-लिखने से काम नहीं चलेगा। लड़कियों को क्या नौकरी करनी है ? जो लोग कुछ पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं, वे लोग भी यह समझ कर लड़कियों को नहीं पढ़ाते कि उनके पढ़ने का देहात में उपयोग ही कैसा होगा ? न जाने कैसे विचार रखने वाले परिवार में पड़ेंगी, फिर यह भावनाएँ, यह संस्कृति, यह अध्ययन, कष्ट का ही कारण बन जायगा। मूर्खता में, अज्ञान में भी एक सुख होता है। सचमुच ही।

जिस किसी तरह से भी हो, जेनी ने कुछ पढ़-लिख लिया था, जरूर। मुहल्ले में एक शिक्षित कायस्थ का परिवार था। वहीं जाकर जेनी जब तब कुछ सीख आया करती थी। सिलाई और काढ़ने-बुनने का भी कुछ अभ्यास उसने वहीं किया था।

इस नयी दुनियाँ में उसे अवसर मिला, क्षेत्र मिला।

उसकी इच्छाएँ फूल उठीं। वह बड़े उत्साह से पढ़ने-लिखने लगी। सुई का काम भी सीखने लगी।

नोरा उसे बहुत उत्साह दिया करती थी। कहती—"हाँ बेटी, ख़ूब पढ़-लिख ले। काम सीख ले। मेरे बाद मेरा काम तुझे ही करना पड़ेगा। समझीं!"

*　　　　*　　　　*

विलियम एक दिन कुछ अस्वस्थ हो गया था। जेनी उसके पास बैठी थी। विलियम ने कहा—"जेनी! मेरी आलमारी में से हरे रङ्ग की वह मोटी किताब तो निकाल लाओ, जो उस दिन मैंने तुम्हें दी थी।

जेनी किताब निकाल लायी।

विलियम ने कहा—"मुझे पढ़कर सुनाओ। दस परिच्छेद लालगञ्ज में मुझे लुइसी ने सुनाया था। उसके आगे पढ़ो।"

जेनी ने शर्मा कर किताब रख दी। बोली—"मुझे अङ्गरेजी पढ़ना तो नहीं आता।"

"ऐं! क्या सचमुच!!" विलियम ने पूछा।

"हाँ।"

"मैं माँ से कहूँगा। वह तुम्हारा नाम क्यों नहीं लिखा देती स्कूल में?"

विलियम के कहने से सचमुच ही दूसरे दिन 'क्रिश्चियन-मिशन गर्ल्स स्कूल' में जेनी का नाम लिखा दिया गया। वह नियम से स्कूल जाने लगी।

—:०:—

१५

दीक्षा

जेनी की पढ़ाई तेज़ी से चलने लगी। ताजपुर आते ही उसकी अङ्गरेज़ी शिक्षा नोरा ने शुरू करा दी थी। उसका विचार था कि जेनी थोड़े दिन तक घर पर ही पढ़ ले तब स्कूल में जाय। साथ रहने के कारण ही साधारणतः अङ्गरेजी बोलने का अभ्यास तो जेनी को हो ही गया था, अब कुछ लिखना-पढ़ना भी सीख गयी थी। इसीसे स्कूल में जाने पर उसकी पढ़ाई धड़ल्ले से चल निकली।

नोरा ने यद्यपि आज तक धर्म-परिवर्तन के लिए जेनी से कभी कुछ कहा नहीं था, पर वह सदा उसका मन टटोला करती थी। उसे यीसूके प्रति अनुरक्त करने में सदा वह यत्नवान् रहती थी। उसके आग्रह से ही रोज़ की प्रार्थना में जेनी को शामिल होना पड़ता, नियम से रविवार को सबके साथ गिरजा में जाना होता और बाइबिल पढ़ना पड़ता था। स्वयं नोरा ही जेनी को बाइबिल पढ़ाती थी। जब कभी बाइबिल की आयतें पढ़ते-पढ़ते नोरा आवेश में आ जाती और बाइबिल की पुस्तक

छोड़कर यीसू की, यीसू के कार्यों की और उनके उपदेशों की व्याख्या करने लगती, तो, मुग्ध-मृगी-सी जेनी सब कुछ भूल कर चुपचाप उसकी ओर देखा करती थी। यीसू की बातें और उनका उपदेश सुनते-सुनते वह उन्मत्त-सी हो जाती और कभी-कभी तो रो भी पड़ती थी।

इस प्रकार, नोरा ने जेनी के हृदय पर विजय पायी थी। उसे अपने रङ्ग में रँग लिया था। अपने धर्म के प्रति उसके हृदय में प्रेम का बीज बो दिया था। अब, वह उसके फूलने-फलने की प्रतीक्षा में थी।

*　　　　*　　　　*

जेनी अपने को भूलने का बहुत प्रयत्न करती थी, अक्सर दुनियाँ की हलचल में भूली भी रहती थी; पर, कभी-कभी उसका हृदय विद्रोह कर ही उठता था। वह अशान्त हो जाती, अधीर हो जाती, विह्वल हो जाती थी। दुख में भी एक सुख है, उनकी स्मृतियों में भी एक आकर्षण। कभी-कभी उन्हीं स्मृतियों के आकर्षण से विह्वल होकर वह छिप कर थोड़ा रो भी लेती थी। रोने से जी का भार हलका होता है। उसे भी बहुत कुछ शान्ति मिलती थी।

स्कूल में ही एक दिन उसका हृदय विद्रोही हो उठा। मास्टरों की बातें वह कुछ समझ न सकी। जी अच्छा न

रहने का बहाना करके स्कूल खतम होने के पहले ही घर लौट आयी।

असमय जेनी को लौटते देखकर नोरा को आशङ्का हुई। उसने देखा, जेनी का मुँह उतरा हुआ है, चिन्तित है, दुखी है। उसने पूछा—"क्यों जेन, तबियत कैसी है? आज इसी वक्त स्कूल से क्यों लौट आयी?"

"न जाने क्यों जी उचाट हो रहा है माँ! कभी-कभी इसी प्रकार हृदय अशान्त हो जाया करता है। बड़ी पीड़ा होती है। कुछ अभाव-सा, कुछ बेकली सी मालूम पड़ती है। मैं बपतिस्मा लूँगी माँ! यीसू की शरण में आने पर मुझे कुछ शान्ति मिलेगी।"

"जरूर मिलेगी बेटी!" उत्साहित होकर नोरा ने कहा। लड़की यीसू के प्रति श्रद्धावान हुई है, यह देखकर उन्हें बड़ा आह्लाद हुआ। बोलीं—"बहुत मिलेगी। मैं सब प्रबन्ध कर दूँगी।"

जिस समय की प्रतीक्षा नोरा बड़ी उमङ्गों से कर रही थी, आख़िर वह समय आ ही गया। उसने बड़ी तैयारियाँ कीं। बड़े उत्सव का प्रबन्ध किया। सभी परिचितों को निमन्त्रित किया। जेनी के प्रति कुछ ऐसी ही ममता उसके हृदय में उत्पन्न हो गयी थी कि वह जो कुछ न कर डालती!

बड़े समारोह किन्तु शान्ति के साथ, एक दिन जेनी ने ईसाई-धर्म की दीक्षा ले ली।

* * *

दीक्षा लेकर और एक मशहूर 'विशप' का 'सरमन' सुन कर जब जेनी घर लौटी उस समय भी उसके हृदय में अशान्ति का बवण्डर तूफ़ान उठा रहा था। वह विकल थी, अधीर थी और उसे नहीं मालूम पड़ता था कि वह क्या चाहती थी।

घर लौटने पर उसकी अनेक सखियाँ उसे बधाई देने, मिलने आयीं, पर किसी से मिलना-जुलना जेनी को अच्छा न लगा। वह एकान्त चाहती थी। उसने शीघ्रतापूर्वक, केवल रस्म अदा करते हुए, सबको बिदा किया।

लोगों से छुट्टी पाकर, वह, अपने ख़ास कमरे में आयी। सावधानी से उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया। फिर पलँग पर लोट कर वह फूट-फूटकर रोने लगी—'हाय ! माँ !! तुम कहाँ हो ? आज अपनी लड़की की यह दशा देखो ? वसन्त, आज तुम कहाँ हो ? ओफ़ ! कौन जानता है।"

एक साथ ही अनेक स्मृतियों ने उसे उन्मत्त सा बना दिया। वह बिछौने पर लोट-लोटकर, छटपटा-छटपटाकर, अपने उच्छ्वसित क्रन्दन को रोकती हुई सिसकती रही।

——:-!-:——

१६

तीन वर्ष बाद

संसार ने अपनी आयु के तीन वर्ष बिता दिए थे। इन तीन वर्षों में कितनी उथल-पुथल, कितना उत्कर्ष-अपकर्ष, कितने फेर-बदल हो गये। ओफ़ !!

सावन की वह एक सुहावनी सन्ध्या थी। थोड़ी देर पहले पानी बरस चुका था। बरसे हुए सुनहले बादल आसमान में टहल रहे थे। पश्चिम का आकाश गाढ़े लाल रङ्ग से चमक उठा था। पूर्व दिशा में रङ्गीन इन्द्रधनुष निकल आया था। पृथ्वी से एक सोंधी सुगन्ध निकल कर चारों ओर गूंज रही थी। धरती के अङ्ग पर बरसात की हरियाली खिल उठी थी।

वसन्त के जीवन में ये तीन वर्ष बड़े महत्व के थे। कभी-कभी, अकेला होने पर वह सोचा करता था कि भगवान् की यह कैसी लीला है ? जन्म भर जिसे दुःखों का ही साथ रहा, बचपन में जो दुःखों से खेला, बड़ा होने पर दुःखों के ही साथ

जिसकी शिक्षा-दीक्षा हुई, आज उसे यह अयाचित सुख किस लिए प्राप्त हो रहा है ? सुख का यह वैभव वह अपने भाग्य के फटे आँचल में कैसे बटोर पावेगा ? भगवान् की इस लीला के अन्तराल में उसकी कौन-सी निष्ठुर इच्छा छिपी हुई है ? कौन कह सकता है !

अमरनाथ के घर में उसने जिस प्रकार ये तीन वर्ष बिताए उसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। वह उस घर का ही एक व्यक्ति हो गया था। इन तीन वर्षों में उसके हृदय की मरुभूमि में माया-ममता और सुख-सुहाग की जो प्रेम-गङ्गा प्रवाहित हुई थी, उसकी तीखी धार में पड़कर, धीरे-धीरे वह बदला जा रहा था। स्वयं वसन्त ही कभी-कभी इस बात को लक्ष्य किया करता था; पर, वह कुछ कर न सकता था। प्रवाह के विरुद्ध तैरने की न उसमें हिम्मत थी और न ताकत। वह, शायद, तैरना चाहता भी न था।

इस घर में उसने क्या-क्या नहीं देखा ! अमरनाथ को कमी ही किस बात की थी ? भगवान् ने काफ़ी धन दे रखा था, अच्छी बुद्धि दी थी और अच्छा परिवार भी दिया था। सभी स्वस्थ, सुन्दर और पढ़े-लिखे थे। मालूम पड़ता था; मानो, इस परिवार ने कभी दुख और निराशा का मुँह भी न देखा हो !

अमरनाथ कुछ ख़ास तरह के आदमी थे। उनके विचार, उनकी रहन-सहन और उनके कार्य, सभी में कुछ विचित्रता, नवीनता और अपनापन होता था। उन्हें किसी के हँसने की चिन्ता न थी और किसी का मुँह देखकर वे अपने विचारों में परिवर्तन न करते थे। स्त्रियों की शिक्षा को वे अत्यन्त आवश्यक समझते थे और उनके घर की सभी स्त्रियाँ सुशिक्षिता थीं। स्त्रियों को बराबर हक़ और स्वाधीनता देना वे उचित समझते थे और उन्होंने दिया था। लोग इसके लिए उन पर उँगलियाँ उठाते, आवाज़ें कसते थे; पर, इसकी उन्हें चिन्ता न थी। वे प्रायः कहा करते थे कि जिसे संसार में जीवित रहना है, उसे संसार की निन्दा-स्तुति की चिन्ता न करनी चाहिए। केवल तत्पर होकर अपना काम करते चलना चाहिए। करने वाले निन्दा-स्तुति किया ही करते हैं। उसकी क्या परवाह ?

पहले-पहल वसन्त ने यहाँ आकर ये रङ्ग-ढङ्ग देखे तो उसके विस्मय की सीमा न रही। देहात का रहने वाला था, शहर के रीति-रिवाज़ और विचार-व्यवहारों से परिचित न था। फिर, आज तो पहले की दुनियाँ भी नहीं रह गयी है। जानने वाले जानते हैं कि उलट-फेर के इस युग में सारा संसार बदल गया है।

वसन्त इस परिवार को देखता और विस्मित होता था। ये लोग ईसाई हैं क्या? ऐसी स्वतन्त्रता-स्वच्छन्दता और इतनी सङ्कोचहीनता तो भारतवर्ष की लड़कियों में नहीं देखी जाती। किन्तु, कुछ दिनों तक साथ रहने पर वसन्त का भ्रम दूर हो गया। समझदार आदमी था, सब बातों का अर्थ समझने की चेष्टा करता और समझता था।

अभ्यास न होने के कारण, पहले-पहल कुमुदिनी और बिन्दु से बातचीत करने और उनके साथ उठने-बैठने में वसन्त को बड़ा सङ्कोच और बड़ी लज्जा होती थी। कुछ ही दिनों में, किन्तु, उस परिवार को तो उसने एकदम घर ही बना लिया, बाहर भी, स्त्री-पुरुषों से बातचीत करने में उसे कोई नवीनता न मालूम पड़ने लगी। नवीनता के दूर हो जाने से ही आकर्षण और कौतूहल और सङ्कोच अलग हो जाते हैं। अब, वसन्त किसी से भी मिल-जुल लेता था। यह बात उसके लिए एकदम स्वाभाविक हो गयी थी।

वसन्त अब पहले का वसन्त ही न रह गया था। अब वह एक समझदार, शिक्षित और सभ्य युवक था, कालेज का विद्यार्थी। दो साल तक घर पर ही अङ्गरेज़ी पढ़कर उसने मैट्रिक परीक्षा पास की थी और इसी साल कालेज में प्रविष्ट हुआ था। इधर के तीन वर्षों में, उसके जीवन नाटक के

बिलकुल नवीन और आकर्षक दृश्य का अभिनय हो रहा था। विस्मय-विस्मित आँखों से वसन्त सब कुछ देख रहा था।

बीते हुए दिन, उसे भूल चुके थे; भूल रहे थे। शायद, जान-बूझकर ही वह उन्हें भुलाने की चेष्टा कर रहा था। किस सुख और आकर्षण की स्मृति को वह अपने हृदय में रखने के लिए उत्सुक होता? जोना अवश्य ही उसके अतीत-जीवन का एक आकर्षण थी, पर, उसका तो अब पता लगाना भी मुश्किल था। ऐसी व्यर्थ की बातों में मन को उलझाए रखना भी क्या बुद्धिमानी है? वसन्त उन दिनों को भूल जाना ही अच्छा समझता था। हाँ, जान-बूझकर।

अमरनाथ को कविताओं से बड़ा प्रेम था। वे स्वयं कवि थे। उनके साथ रहने के कारण वसन्त भी कुछ लिखने की चेष्टा करने लगा और अमरनाथ ने देखा कि कभी-कभी वह उनसे भी अच्छा लिख लेता हैं।

वसन्त कुछ अधिक भावुक था। उसका हृदय कल्पना-प्रवण था। कवि के लिए यह दो गुण ही क्या कम हैं? जब कभी अमरनाथ कहते—"वसन्त, यदि तुम कविताएँ लिखने लगोगे तो लोग मेरी कविताएँ पढ़ना ही छोड़ देंगे।" तो,

हँसकर वसन्त उत्तर देता—"नहीं भैया जी, ऐसा अवसर आने के पहले ही मैं लिखना छोड़ दूँगा।"

*　　　*　　　*

इधर कुछ दिनों से वसन्त विन्दु को पढ़ाने लगा था। अपनी इच्छा से ही उसने यह काम ले लिया था। कुमुदिनी और वंशी से पढ़ने का बदला यदि वह विन्दु को पढ़ाकर दे सके तो क्या यह उसके लिए सन्तोष की बात न होगी?

अमरनाथ विन्दु को अङ्गरेजी पढ़ाने के लिए एक मास्टर की तलाश में थे। लड़कियों को स्कूल कालेज में भेजना वे पसन्द न करते थे क्योंकि वहाँ का वायुमण्डल उनकी रुचि के अनुकूल न था। जब वसन्त को यह बात मालूम हुई तो उसने अमरनाथ से कहा कि "अलग मास्टर की क्या जरूरत है भैया? मैं विन्दु को पढ़ा दूँगा।"

यही बात तय हुई। वसन्त विन्दु को पढ़ाने लगा।

विन्दु अब लड़की न रह गयी थी। उसके किशोर-वय के साथ यौवन की सन्धि हो रही थी। गुलाब की कोमल-पँखुड़ियों की तरह धीरे-धीरे उसका यौवन खिल रहा था। चञ्चलता की जगह, उसमें गम्भीरता आ रही थी।

विन्दु बुद्धिमान थी, तेज़ भी। उसे पढ़ाकर वसन्त बड़ा

सुखी होता था। वह बातें समझती थी और सहूलियत से उन पर बातचीत करती थी। वसन्त के सन्तोष के लिए यही क्या कम था?

१७

प्रेमिका

अपने तेजस्वी सौन्दर्य, मधुर भाषण तथा मिलनसार स्वभाव के कारण वसन्त सभी का प्रियपात्र हो गया था। उसने सभी को आकर्षित किया था; पर, विन्दु का आकर्षण कुछ खास तरह का था। हृदय के उस आकर्षण में प्राणों की ममता थी, जीवन का प्यार। वसन्त के प्रति आत्मोत्सर्ग की सी एक भावना विन्दु के हृदय में उठा करती थी; किन्तु इसे विन्दु के सिवा संसार में और कोई न जानता था। वह जानने देना भी न चाहती थी।

आकर्षण से सहानुभूति उत्पन्न होती है और सहानुभूति ही बढ़ते-बढ़ते प्रेम का रूप धारण कर लेती है। विन्दु के लिए, ठीक ऐसा ही हुआ था। विन्दु, वसन्त के प्रति आकर्षित हुई थी, उसके दुःखों और पीड़ाओं के कारण; उस आकर्षण ने उसके हृदय में वसन्त के प्रति गम्भीर सहानुभूति उत्पन्न कर दी थी; और वह सहानुभूति ही—एकदिन विस्मय से चौंक

कर, विन्दु ने देखा—सहसा उसके हृदय में प्रेम का रूप धारण करके पनप उठी थी। उसे विस्मय हुआ, दुःख भी। हाय, कैसे बिना जाने-बूझे वह इस दलदल में फँस गयी है? प्रेम की दुनियाँ वह दलदल है जिसमें एकबार फँसकर निकलने की आशा मनुष्य को छोड़ देनी पड़ती है। कातर दृष्टि से एकबार विन्दु ने चारो ओर देखा—हाय! उसकी क्या दशा होगी?

अपने मनोभावों को कृपण के धन-सा मन ही में छिपाए रहना भी एक साधना ही है। मन की बातें दूसरे से कह देने से हृदय का भार हलका हो जाता है; पर, उन्हें छिपाए रखने में बड़े साहस और धैर्य की जरूरत पड़ती है। सब लोगों में वह साहस और धैर्य नहीं होता। विन्दु भी कभी-कभी घबरा जाती थी। वह अपने मन की बात किससे कहे?

किसी से अपने मन की बात कहने के लिए वह व्याकुल तो जरूर रहती थी; पर, साथ ही वह उन्हें छिपाए रखने के लिए भी उतनी ही सचेष्ट रहती थी। यद्यपि छिपाए रखना बड़ा मुश्किल है, लेकिन इससे आसान भी तो कोई दूसरा रास्ता नहीं है। फिर?

असफलताएँ मनुष्य के हृदय में वेदना की सृष्टि करती हैं। वेदनाएँ कवित्व का बीज हैं। विन्दु असफल प्रेमिका थी।

वह न अपना प्रेम वसन्त पर किसी प्रकार प्रकट कर सकती थी और न उसे यह आशा ही थी कि उसके प्रेम का प्रतिदान मिलेगा। इस असफलता ने उसका हृदय वेदना और विषाद से भर दिया था। वह धीरे-धीरे कवि हो रही थी।

दोपहर का समय था, छुट्टियों के दिन; विन्दु अपने निर्जन कक्ष में पलँग पर लेटी हुई थी। उसके हाथ में पेंसिल थी और कागज़। वह कुछ लिख रही थी।

सहसा वसन्त ने कमरे में प्रवेश किया। विन्दु ने ध्यान नहीं दिया। उसे मनोयोगपूर्वक लिखते देखकर वसन्त को कौतूहल हुआ। वह चुपचाप उसके पीछे जा खड़ा हुआ; पर, कुछ देख न सका। सहसा चौंककर विन्दु ने देखा, वसन्त खड़ा है। उसका मुँह लज्जा से लाल हो गया। सङ्कोच के कारण उसके मुँह से बोली न निकली। अपराधी की भाँति वह एकटक वसन्त की ओर देखने लगी।

वसन्त बेख़बर था। उसे ये सब रहस्य कहाँ मालूम थे? स्वाभाविक सरलता से उसने पूछा—क्या लिख रही थीं विन्दु तुम?

"कुछ नहीं।" व्यग्र होकर विन्दु ने कहा।

"कुछ तो?"

"ना।"

"लाओ, मैं देखूँ।"

"क्या देखिएगा, वह कुछ नहीं है, जाने दीजिए।"

ज्यों-ज्यों विन्दु उसे छिपाने लगी त्यों ही त्यों वसन्त का कौतूहल बढ़ने लगा। उसने विन्दु के हाथ से काग़ज़ झटपट छीन लिया। देखा, मोती से चुने हुए अक्षरों में कुछ पंक्तियाँ—

"हृदय के दर्पण में प्रतिविम्ब,
पड़ न जाये आकर प्रतिकूल।
इसी भय से कर बैठी हाय,
एक दिन मैं वह भीषण भूल।"

* * *

"जला कर जीवन भर का स्नेह,
न कुछ पा सकी हाय मैं जली।
अरे! यह काँटों से है भरी,
न आना कभी भूल इस गली॥"

वसन्त को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"विन्दु, तुम इतनी सुन्दर कविता लिखने लगी हो? यह बात पहले क्यों नहीं बतायी?"

विन्दु को यह देखकर सन्तोष हुआ कि वसन्त ने और

कुछ नहीं समझा। उसने कहा—"मैं कहाँ कविता लिखती हूँ।"

विन्दु की इस सफ़ाई पर वसन्त को हँसी आ गयी। बोला—"चलो, तुम्हें भैया जी बुला रहे हैं।"

कागज़ को छिपाकर विन्दु, वसन्त के साथ कमरे से बाहर चली गयी।

१८

शिमला की ओर

कमरे में घुमते हुए विन्दु ने पूछा—"क्यों बुलाया है भैया ?"

अमरनाथ ने कहा—"लोगों की राय है कि अबकी गर्मी शिमले में बितायी जाय। तुम्हारी क्या राय है ?"

विन्दु—"ठीक तो है। जब कहीं चलना ही है, तो शिमला ही चले चलिए। अच्छा तो है।"

अमर०—"लेकिन तुम्हारी भाभी क्या कहती हैं ?"

विन्दु—"क्या ?"

अमर०—"पूछो !"

विन्दु ने कहा—"क्या है भाभी ? तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

कुमुदिनी गम्भीर बनी बैठी थी। उसने कहा—"इच्छा मेरी कुछ भी हो, उसके लिए किसी को चिन्ता है ? जाने दो, मेरी कुछ इच्छा नहीं है।"

विन्दु—"नहीं भाभी, ऐसा न कहो। तुम जो कहोगी वही होगा।"

विन्दु की बातों से कुमुदिनी खुश हो गयी। बोली—"मेरी तो इच्छा थी, काश्मीर चलने की। कुछ दिनों तक पहाड़ों में घूमते, फिर श्रीनगर आकर महीना डेढ़ महीना हाउस-बोट में रहते। वह आनन्द कुछ दूसरा ही है। तुम तो कभी श्रीनगर नहीं गयी हो विन्दो?"

विन्दु—"ना भाभी, मैं कहाँ गयी! (अमरनाथ से) क्यों भैया! भाभी की और आप लोगों की इच्छा में फर्क ही कितना है? अरे, शिमला चलिए, वहाँ से काश्मीर भी चले चलेंगे। यह कौन बड़ी बात है। आपने तो ऐसा कहा कि मुझे मालूम पड़ा, यदि आप पच्छिम जायँगे तो भाभी ठीक पूरब जाने की ही बात कहेंगी।"

विन्दु की बात सुनकर सभी हँस पड़े। कुमुदिनी भी अपने को न रोक सकी। और, बंसी तो हँसते-हँसते लोट गया। बहुत अधिक हँसने की उसे आदत ही थी। अमरनाथ ने कहा—"बहुत हँसते हो बंसी!" फिर उन्होंने धीरे से विन्दु से कहा—"तो इतने फ़िज़ूल रुपए जो ख़र्च होंगे वह तुम्हारी भाभी देंगी विन्दो? पूछो! तुम वकालत तो बहुत करती हो उनकी!!"

कुमुदिनी ने बात सुन ली थी; उसे सुनाकर ही अमरनाथ ने कहा था। रुपए की बात सुनकर कुमुदिनी नाराज़ हो गयी। ज़ोर से बोली—"हाँ, हाँ, दूँगी। आपकी तरह कञ्जूस मैं नहीं हूँ। अबकी यात्रा का सारा ख़र्च मैं ही दूँगी। अब हुआ आपको सन्तोष ?"

अमर०—हाँ, ख़ूब हो गया। तुम ख़र्च देना स्वीकार करो कुमुद, तो काश्मीर क्या, मैं विलायत से घूम आऊँ।"

कुमु०—"वाह ! बड़ा काम करें !! दूसरे के पैसे पर इतनी बहादुरी दिखलाने चले हैं। अपने पास से कौड़ी निकालते न बनेगी।"

अमरनाथ की जेब में एक अङ्गरेज़ी पाई पड़ी हुई थी। झट से उन्होंने उसे निकाला और कुमुदिनी को देते हुए कहा—"यह तो तुम सरासर झूठ कहती हो कुमुद, इन्हीं हाथों से कई बार कितनी ही कौड़ियाँ मैंने दी हैं तुम्हें। तुम इनकार कर जाओ तो मैं क्या करूँ ? लो, आज भी एक पाई देता हूँ। भँज़ाओगी तो ख़ाली कौड़ियाँ ही कौड़ियाँ हो जायँगी। एक की क्या बिसात है।"

बंसी ने धीरे से कहा—"भैया ने बड़ी हिम्मत की है !"

कुमुदिनी ने पाई दूर फेंक दी। बंसी से बोली—"तुमने

भी की है ! तुम दोनों भाइयों-सा दाता और भी कोई है ? चलो, रहने दो अपनी दानशीलता।"

विन्दु ने कहा—"भाभी, तुम चिढ़ती क्यों हो ? चिढ़ती हो, इसीलिए ये लोग तुम्हें और चिढ़ाते हैं। उन लोगों को बोलने दो, तुम ध्यान ही मत दो।"

कुमु०—"वैसी बात ही बोलते हैं ये लोग। तुम भी तो उन्हीं की बहिन हो। तुम क्यों नहीं वैसी बात बोलतीं ? सच कहती हूँ विन्दो रानी, इस घर भर में एक तुम्हीं अच्छी हो !"

अमरनाथ ने धीरे से बीच में ही कह दिया—"नहीं, एक तुम भी हो।"

कुमु०—"जाइए, मैं आपसे नहीं बोलती।"

अमर०—"मैं तो आपसे बोलता हूँ।"

कुमु०—"बोला कीजिए। मैं नहीं सुनती।"

अमर०—"सुनना पड़ेगा।"

कुमु०—"मैं उठकर चली जाऊँगी।

अमर०—"तो धमकी क्यों देती हो ? जाओ न। तुम्हें रोकता कौन है ?"

कुमुदिनी गुस्से से गरगराती हुई उठ खड़ी हुई और दरवाज़े की ओर बढ़ी। अमरनाथ ने विन्दु को इशारा किया।

विन्दु ने कहा—"जाओ न भाभी, तुम्हें मेरी क़सम, जो दर-वाज़े से बाहर कदम रक्खा।"

कुमुदिनी लौट पड़ी। बोली—"तो यहाँ बैठकर फजीहत होऊँ? इन लोगों की बातें सुनती तो हो।"

विन्दु—"मैं मना कर दूँगी। ये लोग कुछ न बोलेंगे। यह तो बताओ, फिर क्या तय रहा?"

कुमु०—"मुझे नहीं कुछ तय करना है। तुम लोग जो चाहो करो। मेरी तबियत होगी जाऊँगी, नहीं, चुपचाप पड़ी रहूँगी।"

विन्दु—"यह क्या भाभी! तुम्हें छोड़कर मैं कहीं जाऊँगी? सचमुच ही तुम नाराज़ हो गयी क्या?"

कुमु०—"मैं नाराज़ होकर किसी का क्या कर लूँगी?"

विन्दु—"नहीं भाभी, ठीक बताओ। क्या निश्चय करती हो?"

कुमु०—"चलो, अब की बार शिमला ही चलें। काश्मीर अगले साल के लिए छोड़ दो।"

अमर०—"नहीं, अब यह कैसे होगा। देखो विन्दो, मुझे तो ये कञ्जूसी का दोष लगाती हैं और खुद स्वीकार करके रुपए के लोभ से काश्मीर अगले साल के लिए छोड़ती हैं।

अब तो 'प्रोग्राम' बन गया है। चलें चाहे न चलें, रुपया तो इन्हें देना ही पड़ेगा।"

कुमुदिनी कुछ बोलने जाती थी, तब तक बिन्दु ने कहा—"तुम फिर बोलने लगे भैया ? तुम भाभी को बहुत तङ्ग करोगे तो मैं भी न जाऊँगी।"

अमर०—"अब न बोलूँगा बिन्दो! क्या कहूँ, मुझे बोलने की आदत जो पड़ गयी है, उसी से लाचार हूँ। अच्छा, यह लो मैंने मुँह बन्द किया।"

अमरनाथ ने ज़ोर से अपना मुँह बन्द कर लिया। सब लोग हँसने लगे। कुमुदिनी भी हँस पड़ी।

बनावटी क्रोध से अमरनाथ ने कहा—"अब वे हंसती क्यों है बिन्दो ? बोलने के लिए तो मुझे तुम बहुत डाँटती हो ?"

बिन्दु—"सब लोग हँसते हैं तो वे भी हँसती हैं।"

अमर०—"सब लोग बोलते हैं तो फिर मैं क्यों चुप रहूँ ?"

बिन्दु—"लो भैया, तुम ख़ूब बोलो। हमलोग जाती हैं।"

कुमुदिनी को साथ लेकर बिन्दु बाहर चली गयी। अमरनाथ, बंसी और बसन्त हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

आख़िर, शिमला शैल पर ही गर्मी बिताने का निश्चय हुआ। यह बंसी का प्रस्ताव था। वह जानता था कि इसका कोई विरोध न करेगा। कुमुदिनी ने जब शिमला जाने का

विरोध किया, तब भी बंसी चुपचाप बैठा रहा। क्योंकि, वह कुमुदिनी का स्वभाव जानता था। वह जानता था कि वह थोड़े में ही ख़ुश और थोड़े ही में नाराज़ होने वाली स्त्री है। कुमुदिनी की नाराज़ी की कोई कीमत न थी। वह तुरन्त नाराज़ हो जाती और फिर तुरन्त ही प्रसन्न भी। नाराज़ी उसके मन में मैल न जमने देती थी। माँ-बाप की वह दुलारी बेटी थी और यह स्वभाव उसी दुलार का परिणाम था।

आख़िर, एक दिन सब सामान बाँध कर पञ्जाब मेल से इन लोगों ने प्रस्थान कर दिया।

१९

रेल में---

पञ्जाब मेल लोहे की पटरियों पर दौड़ती हुई हवा से बातें कर रही थी। सेकेण्ड क्लास के एक कम्पार्टमेण्ट में बैठे हुए थे अमरनाथ, बंसी, वसन्त और कुमुदिनी तथा विन्दु।

अमरनाथ लेटकर एक उपन्यास पढ़ने में तल्लीन थे, कुमुदिनी, बंसी, विन्दु और वसन्त मिलकर ताश खेल रहे थे। बंसी स्वभाव से ही ज़रा चञ्चल था, विन्दु का मन भी कौतूहल से भरा हुआ था। ताश का पत्ता फेंकते हुए बंसी ने कहा—"अभी नहीं, थोड़ी रात और हो ले तब देखना भाभी! घने-अँधेरे में, दूर के गाँवों में जलते हुए दीपक जब चमचमा उठते हैं तो एक अद्भुत-सा दृश्य दीख पड़ता है। देहात का सारा संसार अभी थोड़ी देर में सो जायगा और सोती हुई धरती की छाती पर हमारी यह गाड़ी, दिशाओं को कँपाती हुई, नाचती चली जायगी। सारा संसार उस समय घूमता हुआ दीख पड़ेगा और कतार की कतार दीपावलियाँ दूर से सरकती हुई-सी नज़र आवेंगी।"

कुमुदिनी ने कहा—"हाँ बंसी बाबू! वह दृश्य बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है। मैं तो अक्सर अन्धकार में आँखें गड़ा कर देखा करती हूँ। अपने आपको भूल जाती, खो बैठती हूँ।"

बंसी बोला—"और, चाँदनी रात का दृश्य भी देखने ही लायक होता है। दूर तक फैली हुई हरियाली और उस पर पड़ती हुई ज्योत्स्ना की किरनें, हृदय में एक अपूर्व शान्ति और विषाद भर देती हैं। मुझे तो न जाने कैसा मालूम पड़ने लगता है।"

वसन्त ने कहा—"दो दो काम तो साथ नहीं चल सकते बंसी भैया, चाहे तुम खेल ही लो या अलिफ लैला की कहानी ही कहते चलो। रास्ता तो किसी न किसी तरह कट ही जायगा।"

कुमुदिनी हँसी। बोली—"अब जाकर वसन्त का कण्ठ फूटा है। मैंने तो समझा, वसन्त और विन्दु दोनों गूँगे ही हो गये।"

इतने ही में विन्दु ने भी मौन भङ्ग किया—"मुझे बड़ी जोर से प्यास लगी है भाभी! अब तो खेलने का जी नहीं करता।"

बंसी ने सुराही उलट कर देखा, उसमें एक बूँद भी जल शेष नहीं रह गया है। विन्दु को प्यास लगी थी, बड़ी देर से।

वह घबराने लगी—"मुझसे तो अब रहा नहीं जाता भाभी, बड़ी प्यास लगी है।"

वसन्त बोला—"अभी कानपुर में गाड़ी खड़ी होगी तो मैं पानी ले आऊँगा। थोड़ी देर तुम और गम खाओ।"

उस समय साढ़े नौ बज रहे थे। दस बजे गाड़ी कानपुर पहुँचती है। विवश होकर विन्दु को आधा घण्टा तक ठहरना पड़ा। प्यास उसे बहुत ज़ोरों से लगी थी, इससे खेल में फिर जी न लगा। खेल खतम हो गया।

कानपुर का स्टेशन दीख पड़ने लगा। विन्दु को कुछ तसल्ली हुई। यात्रियों से भरे और रोशनी से चमचमाते हुए स्टेशन पर गाड़ी जाकर खड़ी हो गयी। वसन्त ने नौकर को पुकारा।

नौकर पानी लाने गया तो अमरनाथ की समाधि टूटी। उन्होंने कहा—"वसन्त, तुम जाकर दो रुपए की मिठाई लेते आओ। पुल के पार दूकान है। बड़ी अच्छी मिठाई बनाता है।"

वसन्त जाने लगा। कुमुदिनी ने कहा—"और कहीं गाड़ी खुल गयी तो?"

अमर०—"अभी न खुलेगी। १५ मिनट खड़ी होती है।"

कुमु०—"अच्छा तो जल्दी आना वसन्त!"

वसन्त उस समय पुल पर चढ़ रहा था। कुमुदिनी की बात सुनकर बोला—"अभी आया।" और अदृश्य हो गया।

दूकान पर बड़ी भीड़ थी। थोड़ी देर तक वसन्त खड़ा रहा, फिर लौटने लगा। दूकानदार ने पुकारा—"लौटे क्यों जा रहे हैं बाबू जी, लीजिए, क्या लीजिएगा।"

वसन्त लौट पड़ा। उसे देर हो गयी थी। घबरा रहा था। दो रुपए फेंककर उसने कहा—"मिठाई दो। जल्दी करो।"

हलवाई मिठाई तौलने लगा। वसन्त जल्दी मचा रहा था। किसी प्रकार मिठाई लेकर वह दौड़कर पुल पर चढ़ा।

उस समय गार्ड ने हरी लालटेन दिखा दी थी। सिगनल डाउन हो चुका था। गाड़ी छूटने ही जा रही थी। वसन्त दौड़ने लगा। भक्-भक् करके, धीरे-धीरे गाड़ी चल पड़ी।

वसन्त सीढ़ियाँ उतर रहा था। गाड़ी 'फुल मोशन' में जाने लगी। वसन्त ने बंसी को देखा। वे सब भी घबरा रहे थे। पुकार कर वसन्त ने कहा—"अगले स्टेशन पर रुकिएगा। दूसरी गाड़ी से आ जाऊँगा।"

हाँफता-हाँफता जब वह प्लेटफ़ार्म पर आ खड़ा हुआ

उस समय गाड़ी प्लेटफ़ार्म छोड़ चुकी थी। वसन्त ललचायी आँखों से गाड़ी की ओर देखता हुआ, किं कर्तव्य-विमूढ़ बना, चुपचाप खड़ा रहा गया।

——:+ +:——

२०
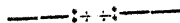
अन्धा-साथी

गाड़ी तो छूट ही गयी। अब, वसन्त बड़ी चिन्ता में पड़ा। टिकट वग़ैरह सब उसी के पास थे, दूसरी गाड़ी आती है रात में तीन बजे; तब तक अमरनाथ आदि कहाँ रहेंगे, क्या सोचेंगे, इन्हीं सब बातों में उलझा हुआ वह घबरा रहा था।

उसने एक तार दे देना उचित समझा। देखा, कानपुर से छूटकर गाड़ी फफुन्द में खड़ी होती है। फफुन्द के स्टेशन मास्टर के मार्फत अमरनाथ को एक तार दे दिया—"फफुन्द मे उतर जाइए। एक्सप्रेस से भोर में पौने छः बजे मैं वहाँ पहुँचूँगा।"

तार देकर वह निश्चिन्त हुआ तो स्टेशन के वेटिङ्ग रूम में जा बैठा। वह कमरे में अकेला था। यात्रा में विघ्न पड़ गया था। उसे कुछ अच्छा न लगता था। अनेक प्रकार की बातें मन में आती थीं। वह दुखी हो गया था।

अवश्य ही उसे कुछ भूख लग आयी थी। उसने थोड़ी सी मिठाइयाँ खायीं। जल पिया। फिर, आँख मूँद कर तरह-तरह की बातें सोचते हुए, धीरे-धीरे सो गया।

दो बज रहे थे। वेटिङ्गरूम का दरवाज़ा खुला और दो व्यक्तियों ने अन्दर प्रवेश किया। बातचीत की आवाज़ सुनकर वसन्त की नींद खुली। उसने देखा, एक ईसाई युवती है, दूसरा युवक। वसन्त ने और भी देखा, युवक अन्धा है और उसकी वाणी में हृदय की गम्भीर करुणा और विषाद निहित है। अधखुली आँखों से वह चुपचाप इनकी गति-विधि परखने लगा।

युवती के सहारे चलकर युवक एक कुर्सी पर आ बैठा। युवती भी कुलियों के सिर से सामान उतरवा कर निश्चिन्त हुई; युवक के पास जा बैठी।

युवक ने कहा—"जेनी, तुम रात भर सोयी नहीं। तुम्हें क्या बिलकुल नींद नहीं आयी?"

"ना"—युवती, जिसका नाम शायद जेनी था, बोली—"ज़रा भी नहीं विलि! मुझे कहीं आना-जाना होता है तो नींद मेरी आँखों से इसी तरह भाग जाती है। तुम तो कुछ सोए हो!"

"हाँ!" युवक ने लम्बी साँस ली। बोला—"हाँ जेन,

मुझे कोई कौतूहल नहीं, कोई उत्सुकता नहीं, इसीलिए किसी बात में मुझे कोई नवीनता नहीं मालूम पड़ती। संसार सदा मेरे लिए एक समान ही रहता है—केवल अन्धकारमय! फिर, किस सुख की आशा में मतवाला होकर मैं खाना-सोना छोड़ूँ? मेरी आँखों पर अन्धकार का जो पर्दा पड़ गया है, उसने मेरे हृदय पर भी उदासी और विषाद का एक सघन पर्दा डाल दिया है। मैं तो दुनियाँ से बिलकुल अलग की चीज़ हूँ न जेन! मेरी दुनियाँ ही निराली है। इसका रस कोई क्या समझेगा?"

विलियम की बात वसन्त ने सुनी। उसके भावुक और सुकुमार हृदय में आघात लगा। अनेक कल्पनाओं से उसका माथा भर गया। तरह-तरह की बातें उस अन्धे ईसाई के सम्बन्ध में वह सोचने लगा। यद्यपि उनसे परिचय करने, उनका हाल-चाल जानने के लिए वसन्त का हृदय उत्सुक हो रहा था, फिर भी वह मौन रहा; अधखुली आँखों में अपने को छिपाए रहा। इन लोगों से परिचय करने के लिए वह कोई अच्छा मौका ढूँढ़ रहा था।

विलियम की बात सुनकर जेनी की सारी प्रसन्नता और चञ्चलता जाती रही। विषाद भरी आँखों से एकबार उसने सोये हुए वसन्त की ओर देखा, सन्तोष की साँस ली; फिर,

चुपचाप शून्य की ओर ताकने लगी। विलियम की बातों का वह उत्तर ही क्या देती ?

धीरे-धीरे गाड़ी के आने का समय नज़दीक आने लगा। यात्रियों में जागृति फैलने लगी। अँगड़ाई लेकर, आँखें मलते हुए वसन्त भी जाग पड़ा और विस्मय से उसने चारो ओर देखा। क्रम से, समय बीता। गाड़ी ने अगला स्टेशन छोड़ दिया। लोग अपना-अपना सामान सँभालने लगे। वसन्त के पास था ही क्या ? वह चुपचाप बैठा-बैठा कौतूहलपूर्वक सब देखने लगा।

जेनी सामान सँभालते-सँभालते व्यस्त हो गयी। अनेक कुली वहाँ आकर आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। वह घबरा गयी। इधर-उधर देखने लगी। उसका सहायक कौन है ?

गाड़ी प्लेटफार्म पर आ खड़ी हुई। सब लोग झपटकर गाड़ी की ओर बढ़े। वसन्त भी चला। उसे जाते देखकर जेनी ने कहा—"महाशय, क्या आप मेरी कुछ सहायता करेंगे ? मेरे साथी नेत्रहीन हैं। इनको लेकर मैं इस भीड़ में घबरा गयी हूँ। क्या आप इन्हें गाड़ी तक पहुँचा देंगे ?"

"बड़ी खुशी से मैडम"—वसन्त ने कहा—"आपकी सहायता करके मुझे प्रसन्नता होगी। आप कहाँ जायँगी ?"

"बड़ी दूर"—जेनी बोली—"मुझे बहुत दूर जाना है। हम लोग शिमला जाने के लिए इस यात्रा में निकले हैं।"

"हलो, तब तो हमलोग सहयात्री हैं। चलिए, यह अच्छा हुआ। मुझे भी एक साथी की अत्यन्त आवश्यकता थी।

विलियम और जेनी को साथ लेकर वसन्त गाड़ी पर जा चढ़ा।

जब गाड़ी ने कानपुर स्टेशन छोड़ दिया, तो निश्चिन्त होकर जेनी वसन्त के पास वाले 'बर्थ' पर जा बैठी। बोली—"मैं आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ? आपने सहायता न दी होती तो आज मैं बड़े सङ्कट में पड़ जाती।"

हँसकर वसन्त बोला—"उसकी कोई जरूरत नहीं है। मुझे इस बात की खुशी है कि मैं आपकी कुछ सहायता कर सका हूँ।"

अभी तक जेनी चञ्चल थी, घबरायी हुई थी, इससे उसने वसन्त को अच्छी तरह से देखा न था। अब जो उसे देखा और उसकी बातें सुनीं तो उसे एक सन्देह होने लगा। बहुत दिनों की एक धुँधली स्मृति जाग उठी। वह एक बार काँप उठी। अरे, जिसे मैं अपने सामने देख रही हूँ, वह क्या वसन्त है?"

सन्देह में विकलता होती है, पीड़ा भी। जेनी उसे बर्दाश्त

न कर सकी। उसने पूछा—"क्या मैं अपने सहायता देने वाले कृपालु मित्र का नाम जानने की धृष्टता कर सकती हूँ?"

"बड़ी खुशी से"—वसन्त ने कहा—"मेरा नाम वसन्त कुमार है। मैं इलाहाबाद में रहता हूँ।"

"आयँ!"—विस्मय से आँखें फाड़-फाड़कर जेनी ने बार-बार वसन्त को देखा। तब तो उसका सन्देह ठीक ही निकला !!

वसन्त को देख और पहिचान कर जेनी विह्वल हो गयी, अधीर हो गयी। उसका मन एकबार वसन्त के सामने रो पड़ने के लिए विकल हो उठा। इतने दिनों की स्मृतियाँ मन में जाग उठीं। एक-एक करके वे सभी जेनी के हृदय में आघात करने लगीं। स्मृतियों का दंशन, सर्प-दंशन से भी अधिक विषैला और बिच्छुओं के डङ्क मारने से भी अधिक पीड़ा देने वाला होता है। वसन्त को आत्म परिचय देने के लिए, अपनी दुःख-कथा सुनाने के लिए उसका मन विद्रोह कर उठा। हाय, वह कितना दुःख, कितना उत्पीड़न सहकर ईसाई हुई है ? वसन्त उसकी व्यथा क्या समझेगा ?

जेनी को रुलाई आ रही थी। उसने अपने को बहुत रोका। खिड़कियों की राह, बाहर ताकती हुई, उसने रुमाल से आँखें पोंछ डालीं। अपने प्रति धिक्कार और ग्लानि के भाव से

उसका हृदय भर गया। हाय, आज वह क्या कहकर वसन्त को अपना परिचय दे? धर्म-त्यागिनी होने की वह कैसी सफ़ाई वसन्त के सामने पेश करे? उसे बड़ी लज्जा मालूम पड़ने लगी। इच्छा रहने पर भी वह अपना परिचय वसन्त को न दे सकी। इस समय आत्म-गोपन करना ही उसने उचित समझा।

वसन्त में कोई परिवर्तन न हुआ था, इसलिये जेनी झटपट उसे पहिचान गयी; पर, जेनी को जोना कहकर पहिचानने की सामर्थ्य किसी में न थी। असली बात यह थी कि जेनी में अब जोना का कोई अस्तित्व शेष ही न रह गया था। इसीलिए, जेनी को देखकर उसके जोना होने की तो वसन्त कल्पना भी न कर सका; पर जोना की याद उसे जरूर आ गयी। उसके हृदय में एक अजीब तरह की बेचैनी उछलने-कूदने लगी। वह चिन्तित हो गया।

वसन्त का यह भाव देखकर जेनी को भी शङ्का हुई—कहीं वसन्त ने उसे पहिचान तो नहीं लिया है?

किन्तु, यह शङ्का निर्मूल थी। वसन्त, जोना की बात सोच रहा था जरूर; मगर, उसके ध्यान में भी यह बात न आयी थी कि वह जिसकी बात सोच रहा है, वह उसके इतना नजदीक, इतना समीप है।

जेनी ने अभिप्राय भरी अपनी आँखें वसन्त के मुँह पर डालीं। वसन्त सिर झुकाकर कुछ सोच रहा था। उसने देखा नहीं! कुछ देर ठहर कर बोला—"यदि आप और कुछ न समझें तो मैं भी आप लोगों का परिचय पूछूँ?"

जेनी की शङ्का और दृढ़ हो गयी। पर, उसने निश्चय कर लिया कि भरसक वह अपने को प्रकट न करेगी। वसन्त से उसने कहा—"ये हमारे भाई हैं, इनका नाम विलियम है। इनकी माता ताजपुर की एक प्रसिद्ध और दयामयी प्रचारिका हैं। उन्होंने अपना जीवन ही अपने 'मिशन' के लिए उत्सर्ग कर दिया है। मैं इन लोगों की आश्रिता हूँ। संसार के उत्पीड़नों से दुखी होकर मैं मरने जा रही थी, उस समय इनकी माता ने मुझे अपनी गोद में आश्रय दिया, स्नेहमयी जननी की तरह। और तब से, उन्हीं के वात्सल्य की छाया में मैं फूली-फली हूँ।"

बात काटकर विलियम ने कहा—"नहीं महाशय, यह झूठ बोलती है। यह हमारी बहन है, और कुछ नहीं।"

वसन्त ने पूछा—"आपका नाम क्या है मैडम?"

जेनी—"मुझे लोग जेनी कहते हैं।"

वसन्त—"आप ही की तरह आपका नाम भी बड़ा सुन्दर है।

कुछ ठहर कर जेनी ने पूछा—"आप कहाँ तक जायँगे?"

वसन्त—"अरे, वह बात आप से मैंने नहीं कही न! हम लोगों को भी शिमला ही जाना है।"

जेनी—"आप लोगों को? आपके साथ और भी कोई है क्या?"

वसन्त—"हाँ, चार-पाँच आदमी। हम लोग रात में ही पञ्जाब मेल से जा रहे थे। असावधानी से मैं यहीं छूट गया। वे लोग अगले स्टेशन पर मेरी प्रतीक्षा में होंगे।

जेनी—चलिए अच्छा हुआ। आप से मुलाकात हो गयी।"

वसन्त—"हाँ, अब तो यहाँ रह जाना मुझे भी अच्छा ही मालूम पड़ता है।

——:-x-:——

२१

"मुझे भूल न जाइएगा।"

फफुन्द स्टेशन के समीप गाड़ी आयी तो उत्सुक होकर वसन्त खिड़की से सिर निकाल कर झाँकने लगा। प्लेटफार्म पर अमरनाथ और वंसी वग़ैरह को देखकर वह प्रसन्नता से चिल्ला उठा। उल्लसित होकर वंसी भी किलकारी देने लगा और कुमुदिनी तथा विन्दु प्रसन्न हुईं। कुलियों ने सामान चढ़ा दिया। वे लोग गाड़ी पर चढ़ आए। इस आकस्मिक रेल-घटना के बाद फिर मिलकर सबों को बड़ा आनन्द हुआ, जैसे कितने दिनों के बिछुड़े हुए मिले हों!

गाड़ी में सब आवश्यक सामान आदि जब रख लिया गया और गाड़ी स्टेशन छोड़कर चल पड़ी, तो, कुमुदिनी वसन्त की ओर फिरी। बोली—"मैंने तुमसे कहा था वसन्त कि गाड़ी खुल जायगी। पर, मेरी बात कौन सुनता है? इन्होंने भी डाँट दिया, तुमने भी कहा—'आता ही हूँ।' रह गए न आते हुए? खुद भी तकलीफ़ उठायी, हम लोगों को भी तकलीफ़ दी।"

हँसकर वसन्त ने कहा—"मुझे क्या तकलीफ़ हुई भाभी ? मैं तो आप ही लोगों की असुविधा की बात सोच-सोचकर मरा जा रहा था। यह तकलीफ़ जरूर थी।"

अमरनाथ ने कहा—"आखिर तुम वहाँ करने क्या लगे ? गाड़ी तो काफ़ी देर ठहरती है। वह १५ मिनट का रास्ता नहीं है।"

वसन्त—"वहाँ बड़ी भीड़ थी भैया........"

कुमु०—"भीड़ थी, चले आते। वहाँ बलिदान होने के लिए तुम्हें भेजा गया था क्या ?"

वसन्त—"जाने दो भाभी, जो हो गया उसके लिए अब क्या निर्णय करना है ! संयोग था, वैसा हो गया। सब दिन तो ऐसा होता नहीं।"

कुमु०—"वाह, होता क्यों नहीं। अभी इलाहाबाद से कानपुर आते-आते तो यह नौबत हो गयी। अब, शिमला देखें किस तरह पहुँचते हैं। अबकी तुम्हारे भाई साहब की बारी है। फिर, बर्सा है। यह सिलसिला क्या कभी टूटने वाला है ? अभी, आगे-आगे देखिए होना है क्या !"

वसन्त को हँसी आ गयी। बोला—"तो यह बात पहले ही क्यों नहीं कह दी थी भाभी ! अब मालूम हुआ कि मेरे बहाने तुम भैया पर दिल का बुखार उतार रही हो !"

अमरनाथ बोले--"मुझ पर तो यह सब है ही बसन्त! मैं खूब समझता हूँ। तुम्हारे रह जाने के बाद इन्होंने मेरी जो दुर्गति की है, वह मैं ही जानता हूँ। पूछो, बंसी और विन्दु से।"

कुमु०—बंसी और विन्दु से क्या पूछें! यह तो मैं ही कहती हूँ कि आपकी गल्ती से ही यह घटना हुई। न आप इन्हें भेजते, न यह सब दुर्गति होती और इतनी तकलीफ़ उठानी पड़ती।"

वसन्त—"हटाइये भाभी, इन बातों में रक्खा ही क्या है। मेरे छूट जाने से तकलीफ़ तो जरूर हुई है सबको, पर, कुछ लाभ भी हुआ है। यह देखिए, हमारी यात्रा के लिए दो साथी भी वहीं मिल गए हैं।"

वसन्त ने जेनी की ओर इशारा किया। अब तक सब लोग इन विवादों में उलझे रहने के कारण जेनी की ओर ध्यान नहीं दे सके थे। वसन्त के इङ्गित करने पर सब लोगों की उत्सुक आँखें एक साथ ही जेनी और विलियम पर जा पड़ीं। कुमुदिनी ने धीरे से पूछ ही तो दिया—"ये लोग कौन हैं वसन्त?"

अब तक, जेनी अपने 'बर्थ' पर चुपचाप बैठी थी। इन लोगों के उल्लास में बाधक होना उसे पसन्द नहीं था। अलग

से ही वह यह प्रेमात्मक संग्राम देख रही थी। यह सब देख-सुनकर उसका मन न जाने कैसा हो रहा था। उसके हृदय में एक आकुल-आकांक्षा, एक अशान्त-अभाव रह-रहकर टीस उठता था। मन ही मन वह सोच रही थी कि ये लोग वसन्त के कौन हैं? शायद, इन्हीं के यहाँ वसन्त रहता है। क्या इस लड़की के साथ उसकी शादी होगी?

जेनी ने विन्दु को लक्ष्य किया। उसके हृदय में उच्छ्वासों की आँधी बह चली, प्रतिस्पर्द्धा की आग सुलगने लगी। उसने बचपन से वसन्त को प्यार किया है। क्या अब उसका वह अधिकार दूसरा कोई छीन लेगा?

किन्तु, शीघ्र ही जेनी सचेत हो गयी। उसके कातर प्राण रो उठे—"हाय, उसने तो स्वयं ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है और अपना वह अधिकार खो दिया है। अब क्या वह उस अधिकार का दावा करने लायक रह गयी है? ओफ़!

वह सोचने लगी कि उसने बिना समझे-बूझे यह क्या अनर्थ कर डाला है? क्या अब इस जन्म में वह यह अधिकार फिर नहीं पा सकती? किसी तरह नहीं? प्राण देकर भी नहीं??

कुमुदिनी के प्रश्न के उत्तर में वसन्त ने जेनी को पास बुलाकर सब लोगों को विलियम की बहिन कहकर उसका

परिचय दिया और विलियम की बात भी कही। विलियम के बारे में सुनकर लोगों में एक गम्भीर-उदासी व्याप्त हो गयी। विन्दु और कुमुदिनी की आँखों में तो आँसू भर आये।

कुमुदिनी और विन्दु, जेनी से, उसके और विलियम के अतीत जीवन की अनेक बातें पूछने लगीं। जेनी भी उन्हें उत्तर देती गयी; पर, उसका मन न लगता था। अनेक तरह की भावनाओं से उसका मस्तक उन्मत्त हो रहा था। वह वसन्त और विन्दु की बात भूल न रही थी। इसीसे वह मन मारे चुपचाप बैठी रही और बीच-बीच में विन्दु और कुमुदिनी की बातों का उत्तर देती रही।

बंसी और वसन्त विलियम के पास जा बैठे। उन लोगों की गपशप अलग ही होने लगी।

अमरनाथ को यह सब अच्छा न लगता था। वे फुरसत पाते ही कोई न कोई कविता की पुस्तक या उपन्यास लेकर बैठ जाते थे। बस।

* * *

कालका में गाड़ी की गति रुद्ध हो जाती है। वहाँ से दूसरी गाड़ी में बैठकर शिमला जाना पड़ता है। इन लोगों ने भी वहाँ उतर कर गाड़ी बदली और कुछ घण्टों में शिमला पहुँच गये।

शिमला पर्वतों का देश है। कालका से ही वहाँ का सौन्दर्य मनुष्य को आकर्षित करने लगता है। स्टेशन पर उतर कर लोग अपने-अपने निर्दिष्ट वासस्थानों की ओर जाने लगे।

जेनी को भी विदा होना था। वह सबसे प्रेमपूर्वक मिली और अलग हुई। वसन्त से बोली—"आपकी सहायता फिर मुझे अपेक्षित है।"

"मैं तैयार हूँ।" वसन्त ने उत्तर दिया।

वह जेनी के साथ बाहर गया। एक टैक्सी पर उन दोनों को बैठाकर बोला—"आप लोगों के कारण यह यात्रा बड़ी सुखकर रही। मैं इसे कभी न भूल सकूँगा।"

जेनी—"आपसे अलग होते हुए मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। हम लोगों के इस थोड़े समय के परिचय ने मेरे मन में बड़ी ममता उत्पन्न कर दी है। देखिए, मुझे भूल न जाइएगा।"

वसन्त ने मन ही मन सोचा—"जेनी की आवाज़ इतना काँप क्यों रही है? वह इस प्रकार विह्वल क्यों हो रही है?" फिर, वह बोला—"अवकाश पाते ही आपसे मैं मिलूँगा। आपका पता क्या है?"

जेब से एक कार्ड निकाल कर जेनी ने वसन्त को दिया। फिर, उसने अपना काँपता हुआ हाथ बढ़ा दिया। वसन्त ने हाथ मिलाया। बोला— "मैं फिर मिलूँगा; गुड बाई!"

"गुड बाई । मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी।" मोटर हवा से बातें करने लगी।

वसन्त के कानों में जेनी की वह काँपती हुई आवाज़ देर तक गूँजती रही—"मुझे भूल न जाइएगा।"

२२
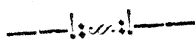
प्रेम की परिभाषा

कुमुदिनी ने पुकारा—"विन्दो !"

विन्दु बाएँ हाथ की मुट्ठी पर कपोल रखकर, सिर झुकाए, अनमनी-सी बैठी थी। उसने कुमुदिनी की आवाज़ सुनी नहीं। चुप रही।

कुमुदिनी ने अबकी ज़रा ज़ोर से आवाज़ दी—"विन्दो रानी !"

विन्दु चौंक उठी। घूमकर उसने देखा—भाभी। बोली—"मुझे पुकारती हो भाभी ?"

"और नहीं क्या तुम्हारे खसम को पुकारूँगी ?"—कुमुदिनी ने हँसते हुए कहा—"किस सोच में पड़ी हो ! क्या देख रही हो ?"

"कुछ नहीं, खाली बैठी हूँ। अकेले जी नहीं लगता।"

"हाँ, इसके लिए तो मैं भी तुम्हारे भैया से 'सिफारिस' करने वाली हूँ। अब तो उन्हें जोड़ा लगा ही देना चाहिए। अब तुम्हारी उमर हुई। अब क्या अकेले जी लगेगा ?"

"देखो भाभी, तुम हर समय दिल्लगी ही करती हो। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"कैसे लगेगा ? थोड़े दिनों में मैं ही बुरी लगने लगूँगी। लेकिन जाने दो, चलो, इस समय कहीं घूम आवें। तुम्हारा भी जी बहलेगा, मैं भी घूम आऊँगी।"

"कहाँ चलोगी ?"

"जहाँ कहो। चलो और ऊँचे पर चले चलें। बादलों के बीच में बैठकर मैं बाजा बजाऊँगी, तुम कुछ गाना। क्यों ?"

"नहीं, मुझे यह पसन्द नहीं है।"

"तब चलो, उस लम्बे, ढालुवें, सफेद सड़क पर चलें जो यहाँ से घूमता हुआ नीचे उतर गया है। वहीं 'क्रिश्चियन मिशन' का बँगला भी है और 'स्काटिश चर्च' भी। सम्भव है, उधर जेनी से मुलाकात हो जाय। और भी बहुत से साहब-मेम उधर घूमते हैं। अङ्गरेज़ी बाजा बजता है, गाना होता है। दिल बहलाने का काफ़ी सामान है।"

"जेनी तो एक दिन यहाँ भी आयी थी।"

"हाँ, वसन्त उसे ले आया था।"

"उससे उनकी बहुत जान-पहचान हो गयी है।"

"मुझे यह पसन्द नहीं है। ये छोकरियाँ बड़ी चुड़ैल होती

हैं। मर्दों को अपने रूप के जाल में फाँसकर खूब उल्लू बनाती हैं। तुम क्या समझती हो?"

कुमुदिनी की बात बिन्दु को अच्छी नहीं लगी। मन ही मन उसने कहा—"वे ऐसे आदमी नहीं हैं, जिनको जो कोई चाहेगा, उल्लू बना लेगा।" कुमुदिनी से बोली—"मैं तो कुछ नहीं समझती। अपना-अपना ख़याल है। जो जैसा समझे!"

कुमुदिनी ने समझा कि वह बसन्त का समर्थन करना चाहती है; पर, सङ्कोच से खुलकर कर नहीं सकती। पूछा—"तो चलोगी उधर?"

"ना।"

"तब यहीं बैठी रहोगी?"

"हाँ।"

"अकेली यहाँ बैठकर क्या करोगी?"

"देखूँगी। देखो भाभी, पश्चिम की ओर देखो। डूबते हुए सूरज की प्रभाहीन किरनों की लाली वहाँ छायी हुई है। नीलम से नीले-आसमान के साथ मिलकर वह कितना सुन्दर मालूम पड़ रहा है। मैं तो इसे देखते कभी नहीं थकती।"

"लेकिन, मेरी रानी, सुन्दरता दो घड़ी की मेहमान है।

अभी सूरज डूब जायगा और अँधेरा हो जायगा, तब यह सुन्दरता कहाँ रह जायगी ? सोचो !"

"वह सुन्दरता कुछ और ही चीज़ है भाभी ! उसमें तो और ज़्यादा नशा और उन्माद है। गर्व से मस्तक ताने हुए इन पर्वतों की गुफाओं से निकल कर और रजनी की साड़ी पकड़ कर जब अन्धकार पृथ्वी पर थिरकने लगता है, उस समय मेरी आँखें पागल होकर उसके गम्भीर आवरण में कुछ खोजने लगती हैं। जैसे, उनकी कोई अपनी चीज़ खो गयी हो।"

"मन खो गया होगा।" कुमुदिनी ने कहा—"तुम्हें अँधेरे में बैठकर चुपचाप ताकते रहना बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है विन्दो ?"

"हाँ भाभी, बड़ा !"

"क्यों ?"

"न जाने क्यों। कुछ आदत-सी पड़ गयी है।"

"यह तो बुरी आदत है। मालूम पड़ता है, तुम्हें कुछ रोग हो गया है।"

"कैसा रोग ?"

"मुहब्बत का।"

"यह कैसा होता है भाभी ?"

"तुम्हारी शकल जैसा।"

बिन्दु, कुमुदिनी का मुँह ताकने लगी—"मेरी शकल को क्या हो गया है ?"

कुमुदिनी ने पूछा—"तुम कविता भी लिखती हो बिन्दो ?"

"नहीं भाभी, कौन कहता है ?"

"वसन्त ने तो उस दिन कहा था।"

"वह सब बच्चों का खेल है !"

"वही खेल तो इस रोग के लक्षण हैं, बिन्दो रानी।"

बिन्दु ने घबराकर कुमुदिनी की ओर देखा—"भाभी का क्या मतलब है ? वे क्या कहना चाहती हैं ?" भोली-भाली निरीह बालिका की तरह वह कुमुदिनी का मुँह ताकने लगी। कुमुदिनी उस समय चिन्तित हो रही थी। उसने बिन्दु की वे आँखें देखी नहीं। इसीसे, कुछ समझ भी न सकी।

कुमुदिनी ने कहा—"तब तुम कहीं जाओगी नहीं बिन्दू ?"

"ना भाभी, मुझे यहीं छोड़ दो।"

"अच्छी बात है। मैं जाती हूँ, लेकिन मुझे तुम्हारे लिए चिन्ता हो रही है। अब इसके लिए मुझे कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। समझीं।"

२३

अन्धे का सुख

शिमला आने पर जब कई दिनों तक वसन्त नहीं मिला तो जेनी बहुत दुखी हुई। उसके मन में वसन्त के प्रति छिपा हुआ बचपन का वह स्नेह जाग उठा, जिसे उसने यत्नपूर्वक भुला देने की चेष्टा की थी। इस समय अपने धर्म-परिवर्तन के कारण उसे बड़ी लज्जा और सङ्कोच हो रहा था। वसन्त के सम्मुख प्रकट होने का उसे साहस न होता था। उसके हृदय में फिर एकबार अशान्ति के काले-काले बादल घिर आये। फिर एकबार विषाद और उद्विग्नता का बवण्डर उसके हृदय में उठ खड़ा हुआ। वह सोचने लगी कि क्यों वसन्त राहु बनकर उसके जीवन-पथ में रोड़े अटकाने आया है? क्यों फिर एकाएक उससे टकरा कर, उसने, उसकी सुख-शान्ति छीन लेने की चेष्टा की है? वह कुछ समझ न पाती, केवल सोचती थी।

एक दिन सन्ध्या को जेनी एक निर्जन सड़क पर अकेली टहल रही थी। सोच रही थी—"उन्होंने आने की प्रतिज्ञा

की थी। आये क्यों नहीं ? वे भी कहीं मुझे पहिचान तो नहीं गये ? पहिचान कर मुझसे घृणा तो नहीं करने लगे ?"

वह सोचती रही, टहलती रही। धीरे-धीरे सन्ध्या हो आयी। रात्रि का अन्धकार चारों ओर फैलने लगा और उसकी छाती पर बिजली की बत्तियाँ एकाएक चमक उठीं, अपना प्रखर-प्रकाश लेकर।

वसन्त को इन बातों की क्या खबर थी ? फुरसत पाते ही एक दिन वह जेनी के दिये हुए पते पर चल पड़ा। उसे अधिक भटकना न पड़ा। वह जेनी के मकान पर पहुँच गया।

वहाँ जाकर देखा, सारा मकान सूना पड़ा है। मालूम पड़ा, मानो, वहाँ कोई आदमी रहता ही न हो। जेनी या विलि का नाम लेकर पुकारना अशिष्टता होगी, इसीसे वह लौटा जा रहा था। सहसा, उसे याद आया कि जेनी कहीं चली तो नहीं गयी और विलियम अँधेरे में चुपचाप बैठा है!

ध्यान आते ही वह अन्दर चला गया। पैरों की आहट सुनकर विलियम ने कहा—'जेन! तू मुझे अकेला छोड़कर कहाँ चली गयी थी ? मैं कब से अँधेरे में बैठा हूँ।"

वसन्त उसी कमरे की ओर अग्रसर हुआ। बोला—"मैं वसन्त हूँ। क्या जेनी कहीं बाहर गयी है ?"

"हाँ !" विलियम ने कहा—"उसे गये बड़ी देर हुई। अब आ ही रही होगी।

वसन्त—"आप अँधेरे में क्यों बैठे हैं ?"

विलि०—"क्या करता, मुझे स्विच जो नहीं मालूम है ! कभी मुझे जलाने की जरूरत तो पड़ती नहीं, जेनी सब कर लेती है। आज न जाने क्यों देर हो गयी उसे।"

वसन्त—"यह आपको कैसे मालूम होता है कि अँधेरा हो गया।"

विलि०—"अँधेरे-उजाले की एक अलग-अलग अनुभूति हो गयी है। स्वभाव से ही वह मालूम पड़ जाता है; पर, प्रकाश की कोई उपयोगिता मेरे लिए नहीं है। इसीसे, मैं उसकी परवाह भी नहीं करता। अँधेरे में ही बैठा रहता हूँ।"

वसन्त—"जब से मैंने आपको देखा है मिस्टर विलि, मेरे मन में एक अजीब तरह की पीड़ा उत्पन्न हो रही है। कभी-कभी जब सोचता हूँ कि यदि मैं भी अपनी आँखें खो बैठूँ, तो, जी न जाने कैसा करने लगता है। जब मैं उस पीड़ा की कल्पना को बर्दाश्त नहीं कर सकता, तो, मुझे यह देखकर बड़ा विस्मय होता है, कि आप उस पीड़ा को कैसे सह लेते हैं !"

विलियम हँसा। उसकी हँसी में उसके हृदय की अथाह वेदना छिपी थी। बोला—"वस्तु का स्वरूप कल्पना में जितना भयङ्कर होता है, वास्तव में वह उतना भयङ्कर होता नहीं। सोचने में अधिक कष्ट है, सह लेने में नहीं। फाँसी का दण्ड पाया हुआ व्यक्ति, फाँसी की कल्पना से जितना व्यथित और उद्विग्न होता है, उतना फाँसी पाने पर नहीं होता। दुख अलग से अधिक डरावने मालूम पड़ते हैं, पास आ जाने पर नहीं। दुख मुझे भी हुआ था बहुत, पर, अब तो सह गया हूँ।"

वसन्त—"न जाने, ईश्वर ने आपको किस अपराध का यह कठोर दण्ड दिया है!

विलियम फिर हँसा। बोला—"यह विश्वास दुर्बल है। ईश्वर इतना निर्मम नहीं है। हम लोग ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसा नहीं समझते। और दुःख? आप इन्हें ईश्वर की नाराजी समझते हैं? यह भूल है। ये तो ठोकरें हैं, जो पग-पग पर हमें याद दिलाती हैं कि यह दुनियाँ सराय है और हमें अपने घर' जाना है। जिसमें हम अपना 'असली घर' भूल न जायँ और वहाँ जाने के लिए हमेशा तैयार रहें, ये ठोकरें—दुःखों और विपत्तियों के रूप में—इसीलिए हमें सदा सचेत करती रहती हैं।

विलियम के उत्तर से वसन्त विस्मित हुआ। उसने पूछा—"यदि हमें अपने घर वापस जाना है, तो ईश्वर हमें यहाँ भेजता ही क्यों है? यह बात तो कुछ समझ में नहीं आयी।"

"आवेगी"—विलियम ने कहा—"सुनिए, एक उदाहरण देकर यह बात मैं आपको समझाऊँगा। ईश्वर एक कुम्हार है। यह दुनियाँ उसका चाक है और दुनियाँ के प्राणी—हम लोग—उसके बनाए हुए बर्तन हैं। कुम्हार चाक में बर्तन उत्पन्न करता है इसलिए कि वे उसके काम आवेंगे, उनमें जल भर कर वह अपनी प्यास बुझा सकेगा। ईश्वर भी इसी अभिप्राय से दुनियाँ में हमें उत्पन्न करता है। हमारी सबसे बड़ी उपयोगिता यही है कि हम उस तक पहुँच सकें, वह हम लोगों में ज्ञान का जल भर कर अपनी प्यास बुझा सके। बस।"

वसन्त अवाक् रह गया—कैसे ऊँचे, कितने पवित्र विचार हैं! ओफ़! वह तो इनकी छाया भी नहीं छू पाया था। वह अपने अन्धे साथी की बातें सोचने में डूब गया। कुछ उत्तर न दे सका।

वसन्त को चुप देखकर विलियम ने कहा—"अन्धत्व में यदि बहुत दुख है तो थोड़ा सुख भी है। यह बात नहीं कि

केवल दुख ही दुख से यह जीवन भरा हो। प्रत्येक चीज़ के दो पहलू होते हैं। सफेदी का कालापन, अच्छाई का बुराई, रात का दिन और दुख का सुख। केवल एक पहलू लेकर किसी वस्तु का निर्माण नहीं हो सकता। हाँ, दुनियाँ चाहे तो वह किसी वस्तु का एक ही पहलू देख जरूर सकती है। उसे कोई मना करने वाला नहीं है।"

वसन्त चुप ही रहा। वह अभी कुछ और सुनना चाहता था। विलियम कहता गया—"आँखें सर्वनाश का मूल हैं। जितना अनर्थ संसार में होता है, उनमें से अधिक का दायित्व आँखों पर ही है। आँखें खोकर मनुष्य दुखी होता है जरूर; मगर, उस दुख में एक शान्ति होती है, एक पवित्रता होती है। अन्धत्व से मनुष्य के हृदय को विश्राम मिलता है, उसकी सत्प्रवृत्तियों को विकसित होने का अवसर। लेकिन, इसके लिए प्राणों की अनुभूति होनी चाहिए। मैं अपने को कभी-कभी बहुत सुखी समझता हूँ।"

विलियम की बातों से वसन्त का विस्मय उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उसने सोचा कि विलियम का जीवन कैसा है? यह एक पहेली है, जिसे समझना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अशान्ति और सन्तोष, हर्ष और विषाद के इस अद्भुत सम्मिश्रण को देखकर वसन्त चकित हुआ, विस्मित हुआ।

विलियम ने बात बदली—"जेनी अभी तक आयी नहीं। कहाँ चली गयी ?"

वसन्त बोला—"मुझे भी देर हुई। अब मैं चलूँगा।"

"क्या आप जाइयेगा? मुझे अकेला छोड़कर? थोड़ी देर और बैठिये न !"

"नहीं, अब फिर किसी दिन मिलूँगा।" विलियम के अभिवादन का उत्तर देकर वसन्त बाहर निकल पड़ा।

२४

वे कौन हैं ?

बाहर निकल कर वसन्त ने देखा, विस्तृत राजपथ विद्युत् की आलोकमाला से आलोकित हो उठा है। गाड़ियों, मोटरों, और मनुष्यों की चहल-पहल उसे अच्छी न लगी। वह सड़क छोड़कर नीचे उतर गया और पथरीले रास्ते में इधर-उधर घूमने लगा। विलियम की बातों ने उसे अस्थिर कर दिया था। वह चञ्चल हो रहा था।

वसन्त कुछ दूर उतर गया। देखा, वहाँ न मनुष्यों की भीड़-भाड़ है और न बिजली की तीखी रोशनी। वह सोचने लगा कि इस थोड़े से अन्तर में यह कैसा महान परिवर्तन है! मालूम पड़ता है, मानो, यह 'वह' शिमला ही नहीं है। मनुष्य का हृदय भी क्या ऐसा ही नहीं है? प्रेम के प्रखर प्रकाश के पास ही निराशा और वेदना का घना अन्धकार भी क्या कहीं नहीं छिपा रहता? ओफ़!

चौथ का चन्द्रमा माथे पर उठ आया था। वहाँ भी एक हलका-धुँधला प्रकाश छाया हुआ था। वसन्त ने सोचा—

"निराशा के अन्धकार में भी इसी प्रकार आशा की एक धुँधली रेखा खिंची रहती है; लेकिन वह केवल मनुष्य को प्रतारित करने, ठगने के लिए।"

सामने एक छाया-मूर्ति दीख पड़ी। वसन्त ने सिर उठाया। देखा, एक स्त्री है। वह पास आयी। वसन्त चौंक उठा—"अरे। यह तो जेनी है!! जेनी इस वक्त; यहाँ? वह यहाँ क्या कर रही है? उसके मन में भी शान्ति नहीं है क्या? उसका हृदय भी किसी ज्वाला से सुलग रहा है क्या?"

जेनी वसन्त के सामने आ गयी। दोनों की चार आँखें हुई। दोनों ने एक दूसरे को पहिचाना। वसन्त ने कहा—"मैं इस समय आपको यहाँ क्यों देख रहा हूँ।"

जेनी ने मन ही मन सोचा कि वसन्त मुझे 'आप' क्यों कहता है? क्या अब मैं उसकी वह 'जोना' नहीं रह गयी हूँ। उसका उच्छ्वसित हृदय, वसन्त के मुँह से एकबार 'तुम' सुनने के लिए अधीर हो उठा। पर, उसे ख्याल आया कि हाय! वह तो अब वसन्त की जोना नहीं रह गयी है। वसन्त को देखने के बाद से यह एक बात रह-रहकर उसके हृदय में टीस उठती थी। केवल एक यही स्मृति उसे उन्मत्त और विह्वल बना देने के लिए काफ़ी हो रही थी।

वसन्त की बात जेनी ने सुनी। बोली—"अकेले जी नहीं

लगता था। सड़कों पर की चहल-पहल और शोर-गुल भी मुझे पसन्द नहीं है। इसीसे इधर चली आयी थी। आप कहाँ आये थे ?"

"आपके ही यहाँ गया था। मालूम हुआ, आप हैं नहीं। बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा। लौटते समय इधर उतर आया हूँ। आपने बड़ी देर लगा दी। विलियम साहब घबरा रहे हैं।"

"सचमुच ही बड़ी देर हो गयी। मैंने इतनी देर करने की बात नहीं सोची थी। आप क्या बहुत देर से आये हुए थे ?"

"हाँ, देर तो काफ़ी हो गयी।"

"आपने शीघ्र ही आने की बात कही थी। इतने दिनों तक आये क्यों नहीं ?"

"अनेक झंझटों में फँसा रहा। इसीसे न आ सका।"

"मैं आपको बहुत याद करती थी।"

"विदेश में ऐसा होना स्वाभाविक है।"

जेनी, वसन्त के समीप ही एक पत्थर पर बैठ गयी। धीमी-धीमी हवा के समान ही उन लोगों की बातचीत का सिलसिला भी जारी रहा।

"आप आजकल क्या करते हैं ?" जेनी ने पूछा।

"पढ़ता हूँ।"

"कहाँ ?"

"प्रयाग विश्व-विद्यालय में।"

"आप लोग वहीं रहते हैं ?"

"हाँ।"

"आपके साथ जो लोग थे, वे आपके कौन थे ?"

"वे लोग.........?"

"हाँ।"

"वे लोग तो मेरे कोई नहीं हैं। मैं उनके यहाँ रहता हूँ।"

"उन लोगों का मकान प्रयाग में ही है ?"

"हाँ।"

"वे लोग क्या करते हैं ?"

"करते तो कुछ नहीं। धनी आदमी हैं; जमीन है, जायदाद है, बैङ्क में रुपये हैं। उन्हीं को खर्च करते हैं। बस।"

"वह स्त्री तो उन बड़े सज्जन की पत्नी होंगी, समझती हूँ।"

"हाँ।"

इसके बाद जेनी जो बात पूछना चाहती थी, वह उसके मुँह से निकलती ही न थी। बिन्दु की बात याद आते ही जेनी का हृदय काँप उठा। बिन्दु, वसन्त की कौन हो सकती है, यह बात सोचकर भी जेनी कुछ न समझ सकी। उसे यह बात

पूछने का साहसही न हुआ। किन्तु, बिना जाने उसके हृदय की विकलता भी दूर नहीं हो रही थी। वह बड़े असमंजस में पड़ी। वसन्त से वह कैसे क्या पूछे?

उसने इधर-उधर देखा, छिपाकर आँख का आँसू पोंछ लिया—वह क्या वसन्त की स्त्री है? वसन्त आज विवाहित है?

लेकिन, उसे ढाढ़स हुआ—लड़की तो कुमारी मालूम पड़ती थी। तब क्या उससे वसन्त का विवाह होगा?

कई बार उसने पूछना चाहा; पर, साहस न हुआ; पूछ न सकी। बात बदलकर उसने कहा—" उन लोगों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। भारतवर्ष में वैसी पढ़ी-लिखी और सभ्य स्त्रियाँ बहुत कम देखने में आती हैं।"

"यह बात सच्ची है"—वसन्त ने कहा—"सचमुच ही अमर भैया ने स्त्रियों के निर्माण में अपनी सारी शक्ति लगा दी है। उनका कहना है कि जब तक स्त्रियाँ शिक्षित न हो लेंगी, उनकी सन्तान भी शिक्षित न होगी और स्वभावतः उन्हें जो सुविधाएँ और ज्ञान माता से प्राप्त होने चाहिएँ, वे न हो सकेंगे।"

"यह तो मानी हुई बात है। ऐसी ही समझ यदि सबकी हो जाय, तो, यह देश एकबार फिर अपना सिर गर्व से उन्नत कर सकता है।"

वसन्त ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसे बहुत देर हो रही थी। वह जाना चाहता था। जेनी को भी और कोई बात नहीं सूझ रही थी। दोनों उठ खड़े हुए और सड़क की ओर बढ़ने लगे।

सड़क पर पहुँच कर जेनी ने कहा—"अब तो आप इस रास्ते से जाँयगे ?"

"नहीं, चलिए आपको पहुँचाता हुआ उधर से ही निकल जाऊँगा।

जेनी यही चाहती थी। दोनों साथ चले। जब जेनी अपने मकान के समीप पहुँची, तो उससे न रहा गया। उसने कहा—"एक बात पूछना मैं भूल गयी थी। वे जो एक दूसरी स्त्री थीं उनसे आपका विवाह होगा ?"

जेनी के स्वर में एक विशेष प्रकार का कंपन था, जिसने वसन्त को चौंका दिया। घबराकर उसने उत्तर दिया—"नहीं तो। कौन कहता है ?"

"कहता कोई नहीं, मैं यों ही पूछती हूँ। वे आपकी कौन हैं ?"

"उस परिवार से मेरा कोई ख़ास संबन्ध नहीं है। मैं बता चुका हूँ।"

वसन्त के उत्तर से, जेनी को कुछ शान्ति मिली जरूर; पर, वह बहुत लज्जित हुई। बोली—"जब तब मिलते रहिएगा।"

"जरूर, जरूर!" वसन्त ने जेनी को पहुँचाकर घर का रास्ता लिया। रास्तेभर जेनी की बातें उसके मनमें तूफ़ान उठाती रहीं। वह सोचता रहा—"आखिर जेनी का मतलब क्या है?"

२५

निर्मोही

अमरनाथ ने कुमुदिनी से कहा—"चलो घूम आवें ?"

"कहाँ चलिएगा ?"

"कहीं भी। जहाँ कहो।"

कुमुदिनी को घूमने का बड़ा शौक था। वह हमेशा ही कहीं न कहीं घूमने निकल जाया करती थी, चाहे कोई साथी मिले या न मिले। लेकिन उस दिन बिन्दु की तबियत कुछ खराब थी। कुमुदिनी ने सोचा, उसे अकेली छोड़कर कैसे जाऊँगी! इसीसे, उसने अमरनाथ को कुछ उत्तर न दिया। चुपचाप बैठी रही।

अमरनाथ ने पूछा—"बोलो, चलती हो ?"

"बिन्दु को अकेली कैसे छोड़ जाऊँगी ?"

"वह न चलेगी क्या ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"उसकी तबियत ठीक नहीं है।"

"क्या हुआ है ?"

"सिर में दर्द है।"

"उसे दवा नहीं खिला दी है ?"

"खिला तो दी है।"

"फिर, उसके लिए यहाँ रहने की क्या जरूरत है ? अभी अच्छी हो जायगी।"

"अच्छी तो हो जायगी; पर, अकेले उसका जी लगेगा ?"

"अकेले क्यों, अभी थोड़ी देर में वसन्त आ जायगा। घर में नौकर चाकर हैं ही।"

बसो ने अमरनाथ का समर्थन किया और कुमुदिनी को चलने के लिए लाचार। इच्छा न होने पर भी कुमुदिनी को जाना ही पड़ा।

* * *

वसन्त सबेरे से ही गया हुआ था, जेनी के यहाँ। लौटने में उसे कुछ देर हो गयी। आकर देखा, घर में कोई नहीं है। केवल एक कमरे में विन्दु लेटी हुई है।

वसन्त विन्दु के पास गया। बोला—"भैया वगैरह कहीं गये हैं क्या ?"

"हाँ, घूमने।"

"तुम अकेली हो ?"

"हाँ।"

"तबियत अच्छी नहीं है क्या?"

"नहीं, सिर में दर्द हो रहा था।"

"अब भी हो रहा है?"

"अब तो कम है, भाभी ने दवा दी थी।"

वसन्त चुप रहा। बिन्दु ने पूछा—"कहाँ गये थे?"

"जेनी के यहाँ।" वसन्त ने उत्तर दिया।

"क्या बातें हुईं?"

"कुछ विशेष तो नहीं। अपने देश के बारे ही में बातचीत हो रही थी।"

"जेनी क्या कहती थी?"

"कहती थी, अशिक्षा है, अज्ञान है, इसीसे तुम्हारे देश की यह दशा है।"

"ठीक ही कहती थी।"

"और भी कहती थी, तुम्हारे यहाँ की रूढ़ियाँ, कुसंस्कार, अर्थहीन अन्धपरम्पराएँ, तुम्हारा और तुम्हारे समाज का सर्वनाश कर रही है।"

"यह भी ठीक ही है।"

"उसकी राय में पर्दा की प्रथा हानिकर और स्वास्थ्य नाशक है।"

"बात सच्ची है।"

"जेनी तुम्हें बहुत पूछती थी बिन्दो!"

बातचीत का प्रवाह दूसरी ओर बह चला। वसन्त के मुँह से निकला हुआ 'तुम' शब्द बिन्दु को बड़ा मधुर, बड़ा आकर्षक मालूम पड़ा। वह लेटी हुई थी, उठ कर बैठ गयी।

वसन्त ने पूछा—"क्या है?"

"कुछ नहीं।" बिन्दु ने कातर दृष्टि से वसन्त की ओर देखा; उस दृष्टि में अधीरता थी, विह्वलता थी, आत्म समर्पण का भाव था।

देख कर भी वसन्त ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। बिन्दु ने कहा—"जेनी तो एक दिन यहाँ भी आयी थी।"

"कहती थी। शायद, उस दिन तुम यहाँ थी नहीं।"

"मैं कहीं बाहर गयी थी।"

कुछ देर फिर सन्नाटा रहा। दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे। बिन्दु की आँखें करुणा और आवेग से भरी हुई थीं। कभी कभी वसन्त की आँख बचाकर वह वसन्त की ओर देख लेती थी। उस देखने में कितनी असमर्थता थी, कितनी विवशता!

वसन्त ने देख कर भी उस दृष्टि का कुछ अर्थ नहीं समझा

उसने पूछा—" तुम्हारी तबियत आज कल अच्छी नहीं रहती क्या बिन्दो ?"

"यह आप कैसे कहते हैं ?"

"इधर पहले की तरह तुम प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ती हो। एक उदासी का, विषाद का सघन परदा तुम्हारे मुँह पर पड़ा रहता है। आँखों में चिन्ता की काली रेखाएँ दीख पड़ती हैं। यह सब क्या है बिन्दो ?"

अनायास ही बिन्दु के मुँह से एक लम्बी साँस निकल गयी। वह बसन्त को क्या उत्तर दे ? हाय, बसन्त ! तुम इतने निठुर, इतने निर्मोही हो ! जान-बूझकर अनजान बनते हो ! ओफ़ !

बिन्दु चुपचाप रही। बसन्त उसका मुँह ताकता रहा। बोला—"इधर तुमने पढ़ना-लिखना भी छोड़ दिया है। न जाने तुम क्या चाहती हो !"

फिर वही प्रश्न ! हाय, वह बसन्त को क्या उत्तर दे, कैसे समझावे कि वह क्या चाहती है ? मन ही मन बिन्दु ने कहा— "तुमने स्त्री का जन्म लिया होता बसन्त, तो समझ पाते कि वह क्या चाहती है। हाय ! इस समय अपनी बात वह तुम्हें कैसे समझावे ?

किन्तु, कुछ उत्तर तो देना ही था। केवल चुप रह जाने

का क्या अर्थ होता ? इसीसे, उसने कहा—"पढ़ने में जी नहीं लगता आजकल। चाहती हूँ पढ़ना जरूर; मगर, पढ़ नहीं पाती। न जाने क्या हो गया है। इच्छा है, कुछ दिनों के लिए पढ़ना बन्द कर दूँ। फिर, जब तबियत ठीक हो जायगी, पढ़ूँगी।"

"आखिर, तुम्हें हो क्या गया है ?"

"क्या कहूँ ? मैं नहीं जानती।" अब, बिन्दु अपने को सँभाल न सकी। उठकर तेज़ी से कमरे के बाहर निकल गयी। अवाक् होकर बसन्त उसकी ओर देखता रह गया; कुछ समझ न सका।

२६
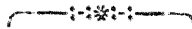
चक्षु-चिकित्सक

वसन्त को कपड़ा पहनते हुए ही झटपट बाहर निकलते देख कर अमरनाथ ने पूछा—"क्या बात है वसन्त, किधर इतना खुश होकर भागे जा रहे हो ?"

वसन्त को रुकने का समय नहीं था। चलते ही चलते उसने कहा—"जेनी के यहाँ जा रहा हूँ भैया, एक अच्छी ख़बर है।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वसन्त बाहर निकल गया। आश्चर्य से अमरनाथ उसकी ओर देखते रह गये।

बाहर निकल कर वसन्त ने सोचा कि पैदल चलने में तो बड़ी देर हो जायगी और क्षणभर का भी विलम्ब उस समय उसे असह्य हो रहा था। उसने एक टैक्सी किराये पर की और जैनी के मकान की ओर उड़ चला।

मोटर से उतर कर वसन्त झपटता हुआ अन्दर चला गया। उसकी तेज़ी देखकर जेनी को आश्चर्य हुआ। बोली—"किधर चले हैं आज ? बहुत खुश हो रहे हैं ?"

"हाँ, खुशी की बात ही है। ऐसा ही सम्वाद लाया हूँ।"

"क्या है ?"

"देखिए।" पायनियर के उसी दिन का अङ्क जेनी के हाथ में देते हुए वसन्त ने कहा—"देखिए, यह सम्वाद अवश्य ही हम लोगों के लिए लाभदायक और हितकारी होगा।"

वसन्त के हाथ से पत्र लेकर जेनी ने देखा। वह एक विज्ञापन था—"जर्मनी के सर्वश्रेष्ठ चक्षु-चिकित्सक डाक्टर डायमण्ड ने एक ऐसी क्रिया का आविष्कार किया है, जिससे वे रोगों के कारण हुई दृष्टिहीनता दूर करने में समर्थ हुए हैं और असंख्य अन्धों को उन्होंने दृष्टि दी है। संसार के कल्याण की कामना से उन्होंने स्वयं संसार का भ्रमण करना आरम्भ किया है और भाग्यवश इन दिनों भारतवर्ष में आए हुए हैं। गर्मियों में एक महीना तक वे शिमला में ………पर रहेंगे। आशा है, इस देश के लोग यह अवसर न चूकेंगे और अपनी आँखों के लिये डाक्टर साहब की सहायता लेंगे।"

जेनी सचमुच ही प्रसन्न हुई। आशा की एक क्षीण ज्योति भी मनुष्य के हृदय को प्रकाशित कर देती है। यद्यपि जेनी को इस बात का विश्वास नहीं था कि विलियम की आँखों में फिर से देखने की शक्ति लौट आवेगी, किन्तु फिर भी एक-बार डाक्टर से मिल लेने के लिए वह उद्विग्न हो उठी।

२६

चक्षु-चिकित्सक

वसन्त को कपड़ा पहनते हुए ही झटपट बाहर निकलते देख कर अमरनाथ ने पूछा—"क्या बात है वसन्त, किधर इतना खुश होकर भागे आ रहे हो ?"

वसन्त को रुकने का समय नहीं था। चलते ही चलते उसने कहा—"जेनी के यहाँ जा रहा हूँ भैया, एक अच्छी ख़बर है।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वसन्त बाहर निकल गया। आश्चर्य से अमरनाथ उसकी ओर देखते रह गये।

बाहर निकल कर वसन्त ने सोचा कि पैदल चलने में तो बड़ी देर हो जायगी और क्षणभर का भी विलम्ब उस समय उसे असह्य हो रहा था। उसने एक टैक्सी किराये पर की और जैनी के मकान की ओर उड़ चला।

मोटर से उतर कर वसन्त झपटता हुआ अन्दर चला गया। उसकी तेज़ी देखकर जेनी को आश्चर्य हुआ। बोली—"किधर चले हैं आज ? बहुत खुश हो रहे हैं ?"

"हाँ, खुशी की बात ही है। ऐसा ही सम्वाद लाया हूँ।"

"क्या है ?"

"देखिए।" पायनियर के उसी दिन का अङ्क जेनी के हाथ में देते हुए वसन्त ने कहा—"देखिए, यह सम्वाद अवश्य ही हम लोगों के लिए लाभदायक और हितकारी होगा।"

वसन्त के हाथ से पत्र लेकर जेनी ने देखा। वह एक विज्ञापन था—"जर्मनी के सर्वश्रेष्ठ चक्षु-चिकित्सक डाक्टर डायमण्ड ने एक ऐसी क्रिया का आविष्कार किया है, जिससे वे रोगों के कारण हुई दृष्टिहीनता दूर करने में समर्थ हुए हैं और असंख्य अन्धों को उन्होंने दृष्टि दी है। संसार के कल्याण की कामना से उन्होंने स्वयं संसार का भ्रमण करना आरम्भ किया है और भाग्यवश इन दिनों भारतवर्ष में आए हुए हैं। गर्मियों में एक महीना तक वे शिमला में ·········पर रहेंगे। आशा है, इस देश के लोग यह अवसर न चूकेंगे और अपनी आँखों के लिये डाक्टर साहब की सहायता लेंगे।"

जेनी सचमुच ही प्रसन्न हुई। आशा की एक क्षीण ज्योति भी मनुष्य के हृदय को प्रकाशित कर देती है। यद्यपि जेनी को इस बात का विश्वास नहीं था कि विलियम की आँखों में फिर से देखने की शक्ति लौट आवेगी, किन्तु फिर भी एक-बार डाक्टर से मिल लेने के लिए वह उद्विग्न हो उठी।

बोली—"क्या आपको विश्वास है कि विलियम की आँखों में फिर से प्रकाश की किरनें जगमगा उठेंगी ? वह फिर देख सकेगा ??"

"मुझे निश्चय है !"

"मैं ऐसा नहीं समझती। फिर भी, उनसे मिल लेना तो आवश्यक ही है।"

"जरूर।"

"विलियम को यह ख़बर देनी चाहिए या नहीं ?"

"इसी समय।"

"कहीं इस सम्वाद की खुशी, उसके कमज़ोर हृदय पर बुरा प्रभाव न डाले।"

"इस समय विशेष प्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है। इसका अभी कोई प्रभाव न पड़ेगा।"

"तब चलिए, आप भी विलियम से मिल लीजिए।"

"चलिए।"

विलियम अपने कमरे में गम्भीर बना चुपचाप बैठा था। आवाज़ सुनकर उसने पूछा—"मुझे एक से अधिक आदमियों के पद-शब्द सुन पड़ रहे हैं। क्या कोई और भी आया है ?"

"हाँ।"

"कौन है? क्या वसन्त बाबू? उनके सिवा दूसरा यहाँ हम लोगों का मित्र ही कौन है?"

यह बात नहीं थी कि शिमला में विलियम का—वसन्त के सिवा—और कोई परिचित न था; पर, वसन्त में अधिक अपनापन बोध करने के कारण ही यह बात उसने कही थी।

"हाँ वे ही हैं और हम लोगों के लिए एक अच्छी खबर लाये हैं।"

"जरूर लाये होंगे क्योंकि बिना किसी खास कारण के वह इतनी जल्दी क्यों आते। अभी कल-परसों ही तो आये थे!"

वसन्त ने विज्ञापन पढ़कर विलियम को सुना दिया। विलियम ने सुना। मुस्कुराया—"आप लोग क्या आशा करते हैं कि मेरी आँखें अच्छी हो जायँगी?"

"अवश्य।" वसन्त ने कहा।

"यह आपकी दुराशा है"—विलियम ने कहा—"अधिक आशा करने से ही पछताना पड़ता है। यह सब कुछ न होगा।"

"लेकिन, एकबार उनसे मिल लेने में क्या हर्ज़ है विलि! न जाने इस सम्वाद में ईश्वर की कौन इच्छा छिपी है!" जेनी ने विलियम से कहा।

अविश्वास होने पर भी यह बात न थी कि आशा की चञ्चलता विलियम के हृदय में न नाच रही हो। वह स्वयं

उतावला हो रहा था; पर, अपनी उतावली प्रकट करना उसे पसन्द न था। बोला—"हर्ज़ तो कुछ नहीं है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उनसे मिलकर देख लो।"

"ठीक है।" जेनी ने वसन्त से कहा—"तो कब चला जाय उनके पास ?"

"अभी चलिए।"

"अमर बाबू को भी क्यों न साथ ले लिया जाय ?"

"जरूर।"

"विलि को भी चलना होगा ?"

"अभी क्या करेंगे जाकर ? पहले हम लोग चलकर उनसे बातचीत कर आवें। फिर, इन्हें ले चलेंगे।"

"ठीक है। तब चलिए। विलि, तब तक तुम यहीं रहो। हम लोग डाक्टर से मिल आवें।"

* * *

टैक्सी उस समय भी दरवाजे पर वसन्त की प्रतीक्षा कर रही थी। जेनी के साथ वसन्त उसपर सवार हुआ। वह हवा से बातें करने लगी।

अमरनाथ के पास जाकर वसन्त ने सारा वृत्तान्त कहा। सुनकर वे भी प्रसन्न हुए। बोले—"तुम तो ऐसा भागे वसन्त,

कि मैं घबरा गया। तब से यही सोच रहा था कि तुम क्यों इस तरह दौड़े गये हो ?"

'खुशी के मारे मैं उस समय अधमरा हो रहा था भैया, मुझे ठहरने की और यह सम्वाद आपको सुनाते जाने की सुध ही कहाँ थी !"

"ठीक है। अच्छा चलो, अब डाक्टर के पास चलें।"

बंसी ने कहा—"मैं भी चलूँगा।"

सब लोग तैयार होकर टैक्सी पर आ बैठे। एकबार फिर वह गाड़ी सड़कों पर धूल उड़ाती हुई दीख पड़ी।

सब लोग डाक्टर से मिले। बातें हुईं। डाक्टर ने विश्वास दिलाया कि वे विलियम को अच्छा कर देंगे। उसकी अन्धी आँखों में फिर एकबार प्रकाश की चञ्चल रेखा फूट उठेगी। तीसरे दिन उसकी आँखों के आँपरेशन करने का निश्चय हुआ।

ये लोग लौटे तो खुशी से जमीन पर पैर नहीं पड़ते थे। डाक्टर की बातें ईश्वर की बातों के समान,विश्वसनीय मालूम पड़ रही थीं। लोगो को जान पड़ा, मानो, विलियम ने आँखें पा ही ली हों। आधार सफलता की पहली सीढ़ी है।

——:·:×:·:——

२७

नारी का हृदय

विन्दु वसन्त के पास से उठ कर दूसरे कमरे में चली आयी। वसन्त की निष्ठुरता ने उसके हृदय पर आघात किया था। उसे मालूम पड़ता था, मानो, जानबूझ कर ही वसन्त ने उसका तिरस्कार किया है, उसे ठुकराया है। वह अभिमान से फूली हुई थी।

वह कुमुदिनी का कमरा था। वहाँ आकर, चादर से मुँह छिपाकर वह लेट गयी। अन्दर ही अन्दर फूल फूलकर रोने लगी। उसका उच्छ्वसित हृदय, क्रन्दन का यह आवेग सहने में असमर्थ हो रहा था; फट जाने का उपक्रम कर रहा था।

वह रोती जाती, सोचती जाती थी कि क्यों ईश्वर ने नारी-जाति को इतना शक्तिहीन और असमर्थ बनाया है? हाय, आज जी खोल कर रो लेने की स्वाधीनता भी उसे प्राप्त नहीं है?

यों ही, वह बड़ी देर तक सोचती और रोती रही। उसे मालूम भी न पड़ा कि कब से कुमुदिनी उस कमरे में आकर उसकी यह लीला देख रही है। सहसा, जब एकबार कुमुदिनी ने पुकारा—"बिन्दो!"—तो, वह चौंक पड़ी। घबरा कर, लजाकर, उसने भीगी हुई अपनी आँखों को पोंछ लिया और कुमुदिनी की ओर देखने लगी।

कुमुदिनीने देखा, उसकी आखें लाल हो रही हैं। चेहरा सूख गया है। मालूम पड़ रहा है, मानो, वह बीमार हो। कई घंटों में इतना परिवर्तन देखकर कुमुदिनी को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—"तुम्हारी तबियत कैसी है बिन्दो? सिर का दर्द अभी अच्छा नहीं हुआ क्या?"

"अच्छा तो हो गया है भाभी।"

"तब तुम रो क्यों रही हो?"

बिन्दु ने कुछ उत्तर नहीं दिया। सूनी आँखों से कुमुदिनी की ओर ताकती रही। कुमुदिनी ने फिर पूछा—"कहो बिन्दो, तुम क्यों इतनी देर से रो रही थी? तुम्हारी आँखें लाल हो गयी है, मुँह सूख गया है। यह क्या बात है?"

बिन्दु क्या बताती कुमुदिनी को? वह अपनी रुलाई न रोक सकी और विवश होकर कुमुदिनी के सामने ही रो पड़ी।

कुमुदिनी विन्दु के समीप आ गयी। उसने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। कुमुदिनी की गोद में सिर छिपाकर विन्दु और ज़ोर से रो पड़ी। अपने को रोक न सकी। आश्रय पाकर मानव-हृदय का उच्छ्वास अधीर हो जाता है; चेष्टा करने पर भी रुक नहीं सकता।

प्यार से विन्दु की आँखें पोंछती हुई कुमुदिनी ने कहा—"तुम्हें मेरी शपथ है विन्दो, तुम रोओ मत। मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। अपने मन की बात मुझे बताओ। छिपाती क्यों हो? क्या मैं गैर हूँ?"

"गैर की बात नहीं भाभी—"विन्दु ने संभलते हुए कहा—"लेकिन जो बात तुम पूछ रही हो, उसे कहने का साहस ही नहीं होता। बात मुँह से निकलती ही नहीं। कह सकती, तो बहुत पहले तुमसे कह दिया होता।"

"क्या वह प्रेम की बात है?"

विन्दु चुप रही।

"मालूम पड़ता है, तुम किसी भले-आदमी को प्यार करने लगी हो विन्दु! है न यही बात?"

उत्तर में सहसा विन्दु के मुँह से निकल गया—"क्या ऐसा मैंने जानबूझ कर किया है भाभी?" कहने को तो उसने

कह दिया; पर, पीछे बहुत शर्मायी—हाय! भाभी क्या सोचेंगी?

"जान बूझ कर वैसा कोई नहीं करता।" कुमुदिनी थोड़ा हँसी। बोली—"तो इसके लिये इतना रोने-धोने, शरीर सुखाने की क्या जरूरत है विन्दु! प्रेम करना क्या बुरी बात है? क्या यह पाप है? मैं तो प्रेमी का आदर करती हूँ, उसकी पूजा करती हूँ, बशर्त्ते कि वह प्रेमी हो; वासनाओं का गुलाम नहीं। तुम्हारे भैया भी इससे प्रसन्न ही होंगे। उन्होंने जो यह इतनी शिक्षा, इतनी स्वाधीनता तुम्हें दे रखी है, उसका अर्थ क्या है? यदि तुम अपनी रुचि और स्वभाव के अनुकूल अपने जीवन का एक साथी चुन लो तो यह हम लोगों के लिए प्रसन्नता की ही बात होगी।"

पैर के अँगूठे से जमीन खुरचती हुई विन्दु चुपचाप बैठी रही। उसने कुछ उत्तर न दिया। कुमुदिनी ने और भी कहा—"मैं तुम्हारी यह दशा कुछ दिनों से लक्ष्य कर रही थी; पर, जब तुम कुछ बताना नहीं चाहती थी, तो, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध, मैं तुमपर ज़ोर डालना भी नहीं चाहती थी। मेरा अनुमान है कि तुम्हारा हृदय वसन्त के हाथों बिक गया है। है न यही बात?"

विन्दु अस्वीकार न कर सकी। उसे आश्चर्य हुआ कि भाभी यह बात कैसे जान गयीं !

कुमुदिनी ने कहा—"अबतक तुमने हम लोगों से यह बात क्यों नहीं कही ? विश्वास नहीं था; क्यों ?"

"यह बात नहीं भाभी ! मैं उन्हें परख रही थी ।"

"परख लिया ?" कुमुदिनी के प्रश्न में चुटकी थी। वह हँसी। विन्दु को भी उसकी बात सुनकर हँसी आ गयी; पर, वह हँस न सकी। उसकी हँसी ओठों में ही खो गयी।

कुमुदिनी के प्रश्न के उत्तर में आज का सारा किस्सा विन्दु बयान कर गयी। कुमुदिनी ने ध्यान से सब बातें सुनी।

कुमुदिनी ने कहा—" तुम उसकी बातों का इतना ख्याल ही क्यों करती हो ? वह तो पागल है।"

विन्दु ने उसकी बात का कोई उत्तर न दिया।

कुमुदिनी बोली—" तुम कुछ चिन्ता मत करो विन्दो ! मैं सब ठीक कर लूँगी। मुझे बड़ा कष्ट है कि नाहक तुम अब तक यह बात छिपाए हुए थी और दुःख उठा रही थी। मैं यह बात उनसे कहूँगी।"

"ना भाभी, अभी यह बात भैया से न कहो। मेरा मन नहीं कहता।

"क्यों ?"

"न जाने क्यों ? जब तक उनका मन न टटोल लिया जाय, तब तक भैया से यह बात कहना ठीक न होगा। यदि उन्होंने (वसन्त ने) तुम्हारी बात न सुनी, तो, मेरे डूब मरने की भी जगह रहेगी ?"

"तुम पागल हो, इसीसे ऐसी बातें कहती हो। तुम्हारी जैसी लक्ष्मी को घर में आते देखकर खुशी से कौन आदमी पागल नहीं हो जायगा ?"

"नहीं भाभी, तुम भूलती हो। वे जानबूझ कर मेरी उपेक्षा करते हैं।"

"यह तुम्हारी भूल है। समझने की इसी गड़बड़ी में कितने ही लोगों का जीवन नष्ट हो जाता है। नारी का हृदय उन्मत्त और अधीर होता है। स्वभाव से ही उसमें कोमलता और भावुकता की मात्रा अधिक होती है। थोड़ी चीज़ को वह बहुत तूल देकर देखती-समझती है। पुरुषों के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात नहीं कही जा सकती। वे ठोस और गम्भीर होते हैं। उनको समझना उतना आसान नहीं है।"

"लेकिन पुरुष तो कहते हैं कि स्त्री को समझना ही अधिक मुश्किल है।"

"वह कहने की बातें है और उनका अर्थ भी दूसरा है।"

विन्दु चुप रही। कुमुदिनी ने कहा—"अब जाती हूँ

विन्दु ! मैं वसन्त के हृदय की थाह लेने की चेष्टा करूँगी। तुमसे फिर बातें करूँगी।"

"हाँ भाभी, उन्हीं को जानने की इस समय जरूरत है।"

कुमुदिनी उठकर चलने लगी। विन्दु ने कातर-दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"लेकिन भाभी, तुम्हें मेरी शपथ है, अभी भैया........."

"तुम उसकी चिन्ता छोड़ दो। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कुछ न होगा।" कुमुदिनी बाहर निकल गयी। विन्दु ने सन्तोष की साँस ली। अपने मन की बात कुमुदिनी से कह-कर वह बहुत हल्की हो गयी थी।

बाहर निकल कर कुमुदिनी ने सोचा—"नारी का हृदय किस धातु से निर्मित होता है ? उसे अपने मान-अपमान का, सुख-दुख का कोई ध्यान नहीं। उपेक्षित, तिरस्कृत होने पर भी वह अपने देवता की पूजा करना ही अपना धर्म समझती है; पूजा करती है। हाय रे नारी का हृदय !

———

२८

ज्योतिर्मय

डाक्टर ने विलियम की आँखें देखीं, तो बड़े प्रसन्न हुए। बोले—"यह तो बहुत आसान ऑपरेशन होगा। आँखों की ज्योति नष्ट नहीं हुई है बल्कि उनके ऊपर एक परदा पड़ गया है, जाली की तरह। उसे साफ़ कर देने से ही इन्हें दीखने लगेगा। कुछ मुश्किल नहीं! ये आँखें जरूर अच्छी होंगी।"

ऑपरेशन हुआ। सात दिन बाद पट्टी खोलने की बात डाक्टर ने कही। विलियम अस्पताल में ही रक्खा गया। उसके उपचार के लिए ख़ास तरह से एक नर्स की नियुक्ति हुई। सब लोग उतावले होकर पट्टी खुलने की प्रतीक्षा करने लगे। नोरा को तार देकर शिमला बुला लिया गया।

विलियम के जी की बात कौन समझ सकता है? उसके हृदय का आनन्द छलका पड़ता था! वह कभी-कभी उत्तेजित हो जाता, पट्टी खोल-फेंकने के लिए अधीर हो उठता। देखने वाले समझते कि पागल हो जायगा! डाक्टर ने यह बात सुनी तो चिन्तित हो गये। एक रोग अच्छा होने के

पहले ही कहीं दूसरा रोग उसे पैदा न हो जाय। आँखें अच्छी होने के पहले ही हर्ष की उत्तेजना से कहीं उसका हार्ट फेल न कर जाय ! तब ?

डाक्टर को बड़ी चिन्ता हुई। एक दिन विलियम के सामने जाकर नर्स से उन्होंने कहा—"मेरा ऐसा विश्वास नहीं है कि पट्टी खोलते ही मरीज़ की आँखें दुरुस्त हो जायँगी और यह देखने लगेगा। अधिक सम्भव है कि अभी दो-एक ऑपरेशन और करना पड़े।"

विलियम ने डाक्टर की बात सुनी तो हताश हो गया। उसका सारा उल्लास जाता रहा। निराश स्वर में उसने पूछा—"पट्टी खोलने पर भी मेरी आँखों में प्रकाश न आवेगा, डाक्टर साहब ?"

"कहा नहीं जा सकता। अधिक सम्भव है आ जाय। यह भी सम्भव है कि एक दो ऑपरेशन की जरूरत और पड़े।"

विलियम के हृदय में चिन्ता का एक भार रखकर डाक्टर साहब चले गए। वह अपने बिस्तरे पर पड़ा रह गया, सुस्त, चिन्तित, उदास।

किन्तु, इस निराशा में, उदासी में भी आशा की एक किरण थी, जो रह-रहकर विलियम के हृदय में चमक उठती

थी। उसका विश्वास था कि पट्टी खोलते ही वह अपनी माँ को, जेनी को, वसन्त को, डाक्टर को—सबको एक साथ देख पावेगा। डाक्टर की बातों ने इस आशा पर आघात किया था जरूर; पर, इसे वे नष्ट न कर सकी थीं।

नर्स बड़ी तत्परता से विलियम की सेवा करती थी। कभी-कभी यह बात विलियम के लिए बड़ा कौतूहल उत्पन्न कर देता। वह कहता—"आप जो दिन को दिन और रात को रात न समझ कर मेरी इतनी सेवा कर रही हैं, उससे मैं कैसे उऋण हो सकूँगा? आप क्यों मेरे लिए इतनी तकलीफ़ करती हैं?"

नर्स के हृदय में एक स्मृति थी। विलियम की बात सुनकर उसे पीड़ा होती। वह कहती—"क्या मैं आपको ऋणी बना रही हूँ महाशय? यह तो हमारा कर्तव्य है, जिसकी पवित्रता की अनुभूति हमें इस ओर अग्रसर करती है। यह हम लोगों के जीवन का व्रत है। आपको अच्छा और देखते हुए देखकर क्या मुझे अपने परिश्रम का पारितोषिक न मिल जायगा? और, फिर आप जो इतना सोचते हैं, यही क्या कम है?" उसकी आँखों में आँसू भर आते, छिपाकर वह उन्हें पोंछ लेती थी। कौन जानता है, उन आँसुओं का क्या अर्थ था?

* * *

ऑपरेशन का सातवाँ दिन था, सबेरे का पहर। अस्पताल में अमरनाथ, बंसी, वसन्त, कुमुदिनी, विन्दु, नोरा और जेनी—सभी—डाक्टर की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी उत्सुक थे, उत्कण्ठित थे, डाक्टर के आने की राह देख रहे थे। विलियम की अधीरता देखने लायक थी।

डाक्टर आया। आते ही उसने पट्टी खोल दी। पट्टी खोलने के समय सभी का हृदय दो परस्पर-विरोधी भावनाओं से काँप रहा था; सभी के मुँह पर शङ्का की चञ्चलता नृत्य कर रही थी।

पट्टी खुली। डाक्टर ने आँखों को धोकर साफ़ कर दिया। सहसा विलियम चिल्ला उठा—"डाक्टर! डाक्टर!! मैं देख रहा हूँ। मेरी आँखों में प्रकाश आ गया है। मेरा जीवन आलोकित हो उठा है।"

उत्तेजित होकर एकसाथ सब लोग हर्षध्वनि कर उठे। नोरा और जेनी, विलियम के समीप जाने के लिए अधीर हो उठीं, पर, डाक्टर ने रोक दिया। उन्होंने कहा—"ईश्वर की दया से इस ऑपरेशन में मुझे सफलता मिली है। विलियम ने आँखें पायी हैं। पर, अभी २४ घण्टे तक और पट्टी बाँधनी पड़ेगी। कल इसी समय, सदा के लिए इनकी आँखों से पट्टी उतर जायगी।"

कृतज्ञताभरी आँखों से नोरा ने डाक्टर की ओर देखा। विलियम ने कहा—"डाक्टर! मैं जीवन भर आपका ऋणी रहूँगा। आपने मुझे नवीन जीवन दिया है। फिर से दुनियाँ को देखने की शक्ति दी है! ओफ़ !!"

डाक्टर हँसा। सब लोग विदा होकर चले गये।

जब आँखें नहीं थीं और उनके लौट आने की कोई आशा भी नही थी, तो बरसों बीत गये थे; किन्तु, आज जब विलियम ने फिर से अपनी आँखें पायीं, तो चौबीस घण्टा व्यतीत करना उसको मुश्किल मालूम पड़ने लगा। उसने सोचा कि यह समय कैसे बीतेगा?

——·:-:०:-:——

२८

तिरस्कार

दिन किसी तरह बीत ही गया। रात हो आयी। अन्धकार के ओठों पर बिजली की बत्तियाँ खिलखिला उठीं। विलियम अपने वार्ड में अकेला था। नर्स उसके पास बैठी हुई थी।

विलियम ने पूछा—"कै बजे होंगे?"

नर्स बोली—"आठ बज गए हैं।"

"अभी ग्यारह बारह घण्टों तक और पट्टी बँधी रहेगी। यह समय कैसे बीतेगा?"

"देखते-देखते ही बीत जायगा। जब वर्षों बीत गये तो कुछ घण्टों की क्या बिसात है?"

"उन वर्षों को बिता देना आसान था मैडम, इन घण्टों को बिताना बहुत मुश्किल मालूम पड़ रहा है।"

"लेकिन विलि.........,"

विलियम चौंक उठा—"यह क्या अपने किसी परिचित की आवाज़ मैं सुन रहा हूँ?"

"हाँ विलि, एक समय था जब हम दोनों एक थे।"

"मैं आप को जानना चाहता हूँ, मेरा कौतूहल बढ़ रहा है।"

"मैं तुम्हारी लुइस हूँ विलि।"

"लुइस ? लुइस ! तुम यहाँ ? इस अवस्था में ? यह कैसी बात है ?"

"यह ऐसी ही बात है विलि, तुम्हारी ममता मुझे यहाँ तक खींच लायी है।"

"मेरी ममता ? ह-ह-ह !"—विलियम ने कहा —"मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में इतनी ममता कब से उमड़ आयी है लुइस !"

सन्देह की दृष्टि से लुइसी ने विलियम की ओर देखा। बोली—"यह तुम कैसी बात कह रहे हो ? क्या वे पिछले दिन तुम्हें भूल गये ?"

"भूल जाते तो ऐसी बात न कहता !"

"बचपन से ही हम लोग एक दूसरे को प्यार करते रहे हैं।"

"लेकिन, आँखों के ही कारण तुमने एक दिन मेरे प्रेम का तिरस्कार किया था, उसे ठुकराया था लुइस ! स्मरण है ?"

घबरा कर लुइसी ने विलियम की ओर देखा। क्या

नोरा ने उसकी बातें विलियम से कह दी हैं ? फिर भी वह बोली—"वह मेरा भ्रम था विलि, आज फिर मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।"

"किन्तु, मैं उसकी उपेक्षा करता हूँ।"

"ऐसी बातें तुम्हारे मुँह से सुनने की आशा मुझे नहीं थी विलि !"

"मुझे दुःख है कि तुम्हारी आशा के विपरीत मुझे आचरण करना पड़ रहा है।"

"किन्तु, तुम जान-बूझकर ऐसा कर रहे हो।"

"शक्तिमान् होने पर सभी ऐसा करते हैं। जब तुम्हारे पास शक्ति थी, तुम्हें अपने रूप-गुण पर अभिमान था, तुमने मेरा तिरस्कार किया था। आज ईश्वर ने मुझे भी शक्ति दी है; और, यह बात सच्ची है लुइस,कि जान-बूझकर मैं तुम्हारा तिरस्कार करता हूँ, तुम्हारे प्रेम को ठुकराता हूँ।"

"किन्तु, सोचो विलि, यह क्या तुम अच्छा करते हो ?"

"नहीं जानता। लेकिन मुझे इसमें सुख मिलता है, सन्तोष होता है। बदला में प्रतिहिंसा का भाव है, अच्छा-बुरा सोचने का नहीं।"

"मेरी उपेक्षा करके क्या तुम सुखी हो सकोगे ?"

"यह भी नहीं जानता। किन्तु, तुम्हारी उपेक्षा करने में भी एक सुख है।"

लुइसी बहुत रोयी-गिड़गिड़ायी; पर, विलियम को वह आकर्षित न कर सकी। एकबार जो चित्त से उतर जाता है, फिर उसे प्यार करना ज़रा कठिन हो जाता है। जब सब तरह से लुइसी हार गयी, तो उसने कहा—"दिन-रात एक करके जो मैंने तुम्हारी सेवा की है,यह किस आशा से विलि ?"

"मुझे मालूम नहीं। यही बात तो मैं भी सोचता था। लेकिन, अगर तुमने इस आशा से की हो, तो बड़ी गलती की है। यह सौदा इतना सस्ता नहीं है। इतनी आसानी से इसका मोल-भाव नहीं किया जा सकता। गाँठ में कुछ रखने की जरूरत होती है लुइस !"

"किस चीज़ की जरूरत होती है विलि, मुझे बताओ। मैं प्राण देकर भी उसे प्राप्त करूँगी।"

"तुम उसे स्वयं ही खो चुकी हो, अब पा नहीं सकतीं। अवसर निकल गया है।"

"मुझे अपनी गलती के लिए पछतावा है।"

"हो सकता है।"

"अब किसी प्रकार तुम मुझे अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकते विलि ?"

"तुम्हारे लिए कुछ भी स्थान शेष नहीं है लुइस ! मैं क्या करूँ ? तुमने स्वयं अपना स्थान नष्ट किया है।"

गुस्से से गरगराती हुई लुइसो उठ खड़ी हुई। बोली— लेकिन देख लूँगी विलि, कि मेरा तिरस्कार करके तुम कैसे सुखी हो पाते हो ?"

"कोई चिन्ता नहीं।"

लुइसी चली गयी। विलियम सोचता रहा कि मनुष्य का हृदय कितना हिंसक होता है ?

३०
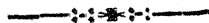
मन में क्या है ?

विन्दु दिन-दिन दुबली हुई जा रही थी। कुमुदिनी को उसके लिए बड़ी चिन्ता थी। वह हमेशा विन्दु को बहलाने की चेष्टा करती, पर, फल कुछ भी न होता था। विन्दु की मानसिक अवस्था दिन पर दिन ख़राब हुई जा रही थी।

कुमुदिनी एक दिन वसन्त से मिली। बोली—"विलियम का क्या समाचार है वसन्त, अब तो वह अपने घर आ गया ?"

"हाँ भाभी !"

"अब उसे कोई शिकायत नहीं रह गयी है न ?"

"ना, अब तो खूब देखता है। कल ही यहाँ आया था। पहिचाना ही नहीं जाता कि यह वही विलियम है। वह उदासी, वह सुस्ती, न जाने कहाँ चली गयी। हमेशा प्रसन्न रहता है, हँसता रहता है। चंचल तो बच्चों की तरह हो उठा है।"

"ईश्वर ने उसे नयी जिन्दगी दी है। वह प्रसन्न न होगा तो कौन होगा ?"

वसन्त ने कुछ उत्तर न दिया। थोड़ी देर तक कुमुदिनी भी चुप रही; फिर बोली—"वसन्त! अब तुम बड़े हुए। ब्याह कर लो न?"

ब्याह का नाम सुनकर वसन्त चौंक उठा—इसी तरह की कुछ बात एक दिन जेनी ने भी कही थी। क्या उस बात से इसका कुछ सम्बन्ध है? भाभी ने ही तो जेनी से कुछ नहीं कहा? इनका मतलब क्या है?

वसन्त ने अपना हृदय टटोल कर देखा, वह वेग से जेनी की ओर अग्रसर हो रहा था। मन की गति कुछ ऐसी है कि परिणाम सोचे बिना ही जब वह किसी पथपर अग्रसर हो जाता है, तो वहाँ से लौटना उसके लिये असम्भव हो जाता है; चाहे, उस पथपर जाने के लिए दुनिया उसका तिरस्कार करे, उसे लांछित करे, ठुकरा दे। वसन्त ने देखा—उसने भी अपना हृदय उन्हीं कटीली पगडण्डियों में खो दिया है; जहाँ, काँटों से वह बिंधेगा, तड़पेगा, छटपटायगा।

कुमुदिनी की बात सुनकर मानो वह आसमान-से गिरा। चौंक कर बोला—"ब्याह? किससे भाभी?"

"भाभी क्या तुम्हारे लिए दुलहिन गाँठ में बाँधे हुई है? मैं तो कहती हूँ, अब तुम सयाने हुए। पढ़-लिख रहे हो। अब

ब्याह करना, घर बसाना चाहिए। सब दिन फकीर बने रहने से ही काम चलेगा ?"

"अभी ब्याह करके उसे खिलाऊँ-पहनाऊँगा क्या भाभी ? इस समय तो स्वयं मैं दूसरे का अन्न खा रहा हूँ। तुम लोगों की दया पर जी रहा हूँ।"

"उसे खाने पहनने का ही दुख होगा ?"—त्यौरियाँ चढ़ा कर कुमुदिनी ने पूछा—"इसे तुम अपना घर नहीं समझते ? हमलोग ग़ैर हैं ?"

"घर तो है ही भाभी ! तुम लोगों को मैंने न पाया होता, तो, कौन जानता है, आज मैं किस अवस्था में होता ? लेकिन—"

"लेकिन क्या ?"

"अभी बंसी भैया का ब्याह तो होने दो भाभी, मेरा नम्बर तो उनके बाद आवेगा।"

तुम्हारे बंसी भैया तो बी० ए० पास करके विलायत जायगे। वहीं से मेम ले आवेंगे। देसी औरत क्या उन्हें पसन्द आवेगी ?"

कुमुदिनी की बात सुनकर वसन्त गम्भीर हो गया। वह फिर भी सोचने लगा कि जेनी के उस दिन की बात से भाभी के इस प्रस्ताव का कुछ संबन्ध है क्या ?

वसन्त को निरुत्तर देखकर कुमुदिनी ने कहा—"तो बोलो क्या कहते हो ?"

"अभी मैं क्या कहूँ भाभी, अभी तो बहुत समय है, फिर देखा जायगा।"

"आखिर तुम क्या करोगे ?"

"कुछ नहीं। जो आपलोग कहेंगे, वही करूँगा।"

"लेकिन, तुम्हारे मन में क्या है ?"

"मेरे मन में ? मेरे मन में कहाँ कुछ है ? कुछ नहीं।"

वसन्त की घबड़ाहट देखकर कुमुदिनी ने मन ही मन कहा—"तुम्हें भी तो वही मर्ज़ मालूम पड़ता है। अकेली कुमुदिनी कैसे इन दो दो मरीज़ों का इलाज कर सकेगी ? ओफ़ !"

कुमुदिनी जाने लगी तो वसन्त ने कहा—"तुम्हारा मतलब मैं कुछ समझा नहीं भाभी !"

"अभी कुछ दिन और पढ़ो !" हँसती हुई कुमुदिनी बाहर चली गयी। उसके अधरों पर हास्य था, किन्तु हृदय में चिन्ता सुलग रही थी।

वसन्त ने मन ही मन सोचा—"भाभी कितनी स्नेहमयी हैं, कितनी हास्यमुखी ! मालूम नहीं पड़ता कि अपनी भाभी

नहीं है। यह एकदम अपना घर हो गया है! क्या कभी इसकी ममता छोड़ सकूँगा?

वसन्त और भी सोचने लगा—'जेनी उस दिन वैसी बात कह रही थी। भाभी ब्याह का प्रस्ताव कर रही हैं। विन्दु की दिन पर दिन यह दशा हुई जा रही है। यह सब क्या है? क्या विन्दु मुझे चाहती है? हाय, यह कैसा अनर्थ हुआ? इन लोगों के उपकारों का बदला क्या मैं विन्दु के हृदय को उजाड़ कर दूँगा? यह सब क्या हो रहा है? हे भगवान्, इस बालिका की रक्षा करो।

३१

मत आओ

"इस जीवन के लिए हम लोग मिलन की आशा छोड़ दें वसन्त, वह असम्भव है। हमारे प्रेम के बीच में धर्म की जो विशाल प्राचीर है, इस जीवन में हम लोग उसे पार नहीं कर सकते। मन को झूठा आश्वासन देकर ठगना ठीक नहीं है।"

"लेकिन मैं तुम्हारे लिए धर्म छोड़ दूँगा।"

"मैं तुम्हें वैसी सलाह न दूँगी। तुम्हारे धर्म छोड़ने के पहले ही मैं प्राण छोड़ दूँगी। यहाँ सुख नहीं है, शान्ति नहीं है, विश्राम भी नहीं। यहाँ आकर क्या करोगे? मत आओ। सुखी न हो सकोगे। मेरी तरह पछताओगे।"

एक करुण दृष्टि से जेनी ने वसन्त की ओर देखा; पर, वसन्त उस समय चिन्ताओं में डूबा हुआ था। उसने जेनी की बात सुनी नहीं, उसका अभिप्राय समझा नहीं।

"धर्म क्या प्रेम का बाधक है जेनी?"

"नहीं।"

"फिर, तुम ऐसा क्यों कहती हो?"

"इसलिए कि यह समझ अभी तुम्हारे समाज और देश में नहीं आयी है।"

"मैं ऐसे समाज की परवाह नहीं करता "

"करना चाहिए।"

"क्यों?"

"उसे रास्ता दिखाने के लिए, सुधारने के लिए, उन्नत बनाने के लिए। यह क्या हमारे जीवन का श्रेष्ठ उपयोग नहीं है वसन्त, कि हम अपने समाज और देश का कल्याण करने के लिए, अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का बलिदान कर दें? आत्मोत्सर्ग के द्वारा आगे का पथ परिष्कृत कर दें!"

"है। किन्तु ....,"

"किन्तु कुछ नहीं। मिलन में वासना की बदबू है, अलग रहकर शुद्ध मन से प्रेम करने में त्याग और उत्सर्ग की स्वर्गीय सुगन्ध! आओ, वसन्त! हम लोग आज प्रतिज्ञा करें कि आजन्म अलग रहकर हम लोग एक दूसरे को प्यार करेंगे और देश के कल्याण के लिए अपने जीवन की आहुति दे देंगे? बोलो, तैयार हो?"

"हूँ।" वसन्त का अन्तर काँप रहा था, हृदय में पीड़ा थी।

जेनी दृढ़ थी। उसकी आवाज़ स्थिर थी, गम्भीर भी।

बोली—"तय हुआ। यह जीवन इसी साधना में लगाकर हम लोग धन्य होंगे।"

वसन्त की आँखें आकाश पर थीं। वह सोच रहा था—"नारी का हृदय क्या है?"

—:-:~ : ~:-:—

३२

बैंग ! बैंग !!

सात आठ दिन बीत चुके थे।

अँधेरी रात थी। पत्थर के एक टीले पर विलियम बैठा था, जेनी भी पास ही थी। जन-कोलाहल से वह स्थान दूर था और वे दोनों—आकाश के नीचे—वहाँ, अकेले थे।

विलियम कह रहा था—"तुम्हीं ने आँखें दी हैं जेन! तुम्हीं मुझे यह भीख भी दो। तुम्हें छोड़कर मैं और कहाँ जाऊँ?"

"देखो विलि, जिस अत्याचार से ऊबकर मैं तुम्हारी शरण में आयी थी, आज वही अत्याचार तुम स्वयं करना चाहते हो। यह क्या अच्छी बात है? क्या इसीलिए तुमने मुझे आश्रय दिया था?"

"प्रेम में अत्याचार नहीं होता जेन! मैं तुम से ज़बरदस्ती थोड़े ही कर रहा हूँ? मैं तो याचक होकर तुमसे प्रेम की भीख माँग रहा हूँ। क्या मुझे यह भीख न मिलेगी?"

"विलि, मैं तुमसे कह चुकी हूँ, जो हृदय बिक गया है, उसके प्रेम का दान मैं तुम्हे कैसे दे दूँ ? बोलो !"

"मैंने लुइसी को ठुकरा कर तुम्हें प्यार किया है।"

"गलती की है।"

"किन्तु, अब उसे सुधारने का कोई उपाय नहीं है।"

"उपाय है विलि ! तुम उससे क्षमा माँगो। उसे प्यार करो। सुखी होओ।"

"सम्भव होता, तो मैं जरूर ऐसा करता, पर, नहीं। वह नहीं किया जा सकता।"

"बड़े बुरे मार्ग पर पैर रक्खा है विलि, लौट जाओ।"

"मैं निश्चय कर चुका हूँ।"

"लेकिन पछताना पड़ेगा।"

"मुझे दुख न होगा।"

थोड़ी देर शान्ति रही; फिर, विलियम ने पूछा—"तुम क्या समझती हो जेनी, तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान मिलेगा ?"

"प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता; उसे उत्सर्ग की आकांक्षा है।"

"वसन्त तुम्हें ठुकरा देगा।"

"सह लूँगी।"

"वह तुम्हारी उपेक्षा करेगा।"

"स्वीकार कर लूँगी।"

"तिरस्कार करेगा।"

"सिर झुका दूँगी।"

"लेकिन, किस लिए ?"

"प्रेम के लिए।"

"वह तुमसे विवाह न करेगा। जानती हो ?"

"जानती हूँ।"

"फिर, जान-बूझकर क्यों जलने जा रही हो ?"

"सुख की आशा है।"

"कौन सुख ?"

"आत्मोत्सर्ग का।"

विलियम चुप हो गया। उसके हृदय में आग सुलग रही थी। वसन्त के प्रति ईर्ष्या से उसका हृदय भर गया था। हिंस्त्र-पशुओं की सी लाल-लाल आँखों से वह जेनी की ओर ताकने लगा। अन्धकार में वह दृष्टि जेनी देख न सकी।

सहसा "बैंग-बैंग" की आवाज़ हुई और देखते ही देखते जेनी जमीन पर गिर कर तड़पने लगी। विलियम घबरा कर उठ खड़ा हुआ। चकित नेत्रों से इधर-उधर देखने लगा।

एकाएक लुइसी उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। विलियम की ओर देखकर वह एक विकट हँसी हँसी। बोली—"मुझे पहचानते हो ? मैं लुइसी हूँ।"

"लुइसी ?" विस्मय-विस्मित विलियम ने काँपकर कहा—"लुइसी ! तुमने यह क्या किया ?"

"खूब किया ! अच्छा किया !! जो करना चाहिए था, वही किया।" पैशाचिक हँसी हँसकर, आनन्द से करतालियाँ देती हुई, लुइसी ने उत्तर दिया। उस समय वह पागल हो रही थी, उन्मत्त हो रही थी। उसकी ओर देखते हुए विलियम को भय मालूम हुआ।

३३
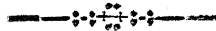
खून की प्यासी थी

काँपते हुए स्वर में, ज़ोर भर चिल्लाकर विलियम ने पुकारा—"पुलीस ! पुलीस !!"

लुइसी फिर हँसी। बोली—"पुलीस को पुकारने की जरूरत न पड़ेगी। जिस लिए तुम पुलीस को पुकार रहे हो वह मैं स्वयं ही कर डालूँगी। पर ठहरो, अभी मुझे कुछ और करना है।"

"क्या करना है ?"—विलियम का गला सूख गया। घबरा कर उसने कहा—"तुम हमें भी मारोगी क्या ?"

"नहीं, तुम्हें नहीं। जेनी की बातें सुनकर उसे मारने की भी इच्छा न रह गयी थी। उसका जीवित रहना भी तुम्हारे जलाने के लिए कुछ कम न होता, लेकिन, जब घर से तैयार होकर आयी थी तो बिना उसे मारे लौट जाना कमज़ोरी मालूम पड़ी। मालूम हुआ, मानो, मेरी दुर्वलता अपनी सफ़ाई के लिए बहाना ढूँढ़ रही है, और, असली बात यह थी कि

मैं खून की प्यासी थी। बिना खून पिए, बिना अपनी प्यास बुझाए, यहाँ से लौट जाना मुझे अभीष्ट न था।"

साँस रोककर लुइसी का उन्मत्त-प्रलाप विलियम सुनता रहा। जब वह चुप हो गयी, तो, लम्बी साँस लेकर बोला—"हे भगवान्! मैं न जानता था कि प्रेम इतना हिंसक होता है, उसका परिणाम इतना भयङ्कर, इतना दारुण होता है!"

"नहीं जानते थे, तो अब जानो। प्रेम करना जितना आसान है, प्रेम का तिरस्कार करना और उतना ही भयानक भी ख़तरनाक है। प्रेम करना आग से खेलना है। यह अगर मीठा है तो कडुआ भी है।"

लुइसी ने और भी कहा—"सुनो, अब मेरा काम ख़तम हो गया। मैंने तुमसे प्रेम किया था, इसीसे मन में एक ममता अब भी बनी हुई है। अन्तिम बार तुम्हें एक बात कहे जाती हूँ। मानोगे तो मुझे शान्ति मिलेगी। अब,इस जीवन में किसी से प्रेम न करना, अपनी आग में जीवन भर आप ही सुलगते रहना और अगर कोई रमणी तुमसे प्रेम करे, तो, उसका तिरस्कार भी मत करना, ठुकराना भी मत। समझे! बस।"

पिस्तौल की आवाज़ फिर सुन पड़ी और क्षण भर में विलियम ने देखा कि लुइसी जमीन पर तड़प रही है। उसने अपनी छाती में गोली मार ली थी।

क्षण भर विलियम पागल-सा खड़ा रहा। फिर, उसने शोर मचाया। कुछ लोग इकट्ठे हुए। नोरा को ख़बर दी गयी। पुलीस भी आ गयी। जेनी और लुइसा को उठाकर अस्पताल पहुँचाया गया।

३४

मैं जोना हूँ ?

अस्पताल में अपनी ज़बान बन्दी देकर लुइसी ने रातमें ही शरीर छोड़ दिया। उसकी छाती में गोली आर-पार हो गयी थी। जेनी को चोट लगी थी गहरी; मगर, कन्धे पर। इसीसे, एक-दो दिन उसके जीने की आशा थी।

रात भर जेनी बेहोश रही। गोली कन्धे में से निकाल ली गयी थी। रक्तस्राव अधिक होने के कारण उसके मुँह की कान्ति फीकी पड़ गयी थी। रातभर वह निर्जीव-सी पड़ी थी। सबेरा होने पर जब उसे होश आया, तो, विलियम उसके पास ही बैठा था। उसे अक्षत देखकर जोना प्रसन्न हुई। बोली—"तुम बच गये ? अच्छा हुआ। लेकिन, यह पता नहीं लगा, गोली किसने, किस अभिप्राय से चलाई थी ?"

विलियम ने संक्षेप में सारी कथा जेनी को सुना दी। सुनकर जेनी आश्वस्त हुई। बोली—"मेरे हिन्दू-संस्कार आज—अन्तिम समय में—प्रबल हो उठे हैं। प्रेम-यज्ञ में मेरी आहुति हुई, यह अच्छा ही हुआ है। अब, एकबार वसन्त और

उनके परिवार वालों से मिल लेने की इच्छा है। उन लोगों को बुला दो।"

नोरा स्वयं वसन्त आदि को लाने के लिये गयी थी। थोड़ी देर में सब को साथ लेकर लौट आयी।

इस आकस्मिक घटनाने सब को चंचल बना दिया था। सब के हृदय रो रहे थे, आँखें सजल हो रही थीं। आनन्द में विषाद का यह सम्मिश्रण कैसा खटकने वाला था !! ओफ़ !

जेनी ने वसन्त को अपने पास बुलाया, बैठाया। कहा—"वसन्त, अब जा रही हूँ। तुम्हें अकेला छोड़कर जाने की इच्छा नहीं थी; पर, 'उसकी' इच्छा हमारी तुम्हारी—सबकी—इच्छाओं से ऊपर है। उसकी इच्छा पूरी हो। तुम अपनी प्रतिज्ञा याद रखना। अकेले रहकर भी उसे पूरी करने की चेष्टा करना।"

वसन्त की आखों में जल भर आया। वह चुपचाप जेनी की ओर देखता रहा। जेनी ने फिर कहा—"वसन्त ! मैंने एक बड़ा भारी अपराध किया है। इसीसे तुम्हें मरने के समय विशेष रूप से याद कर रही हूँ। आज तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं। सब बातें कह दूँगी तो मरने पर शान्ति पा सकूँगी, मरने के पहले भी हलकी हो सकूँगी। सुनो, जी कड़ा करके, छाती पर पत्थर रख कर, अपने समाज की पाप कथा सुनो।

तुम मुझे पहिचानते नहीं हो। पर मैं आज से नहीं, उसी समय से तुम्हें पहिचान रही हूँ, जब कानपुर के वेटिङ्ग रूम में पहले पहल तुम्हें देखा था। आज तुम भी मुझे पहिचान लो। मैं तुम्हारी जोना हूँ।"

"तुम ? जोना ??"—विस्मय की अधिकता से वसन्त चिल्ला उठा—"तुमने अब तक मुझे यह बात क्यों नहीं बतायी जोना ? तुमने मुझे अन्धकार में क्यों रखा ? मुझ से इस तरह छल क्यों किया ? बोलो !"

जोना ने कहा—"शान्त होओ भाई, यह दुःख करने और पागल होने का समय नहीं है। मेरी बातें सुनो। मैं धर्म त्यागिनी हुई हूँ। मैंने ईसाई धर्म ग्रहण किया है। समाज के उत्पीड़न से मैं धर्म छोड़ने को विवश हुई थी। धर्म छोड़ कर शान्ति पाने की भी मुझे आशा थी, पर वैसा कुछ हो नहीं सका। आज अनुताप से मेरा हृदय जला जा रहा है। नरक की लपटें मेरे अन्तर में उठ रही हैं। दुनिया मुझे देखे और सबक सीखे। अगर अपने घर में सुख नहीं है, अपनी परिस्थिति में सन्तोष नहीं है, तो, सुख और सन्तोष कहीं नहीं है। उसके लिये भटकना व्यर्थ है। जो भटकेगा, मेरी ही तरह उसे धोखा खाना पड़ेगा।

इसके बाद संक्षेप में, धीरे-धीरे, माता की मृत्युसे लेकर

आज तक की कथा जोना सुना गयी। वसन्त, हृदय पर पत्थर रख कर सब सुनता रहा। और लोग भी आश्चर्य पूर्वक जोना की कथा सुनते और आँसू बहाते रहे।

जेनी ने अन्त में कहा—"मेरी बातें समाप्त हो गयीं। मैं भी अब कुछ ही समय की मेहमान रह गयी हूँ। एक प्रार्थना है, तुम लोग मेरा शरीर जला देना, गाड़ना मत। इससे मुझे कुछ शान्ति मिलेगी। हाँ; वसन्त! तुम मेरे लिये दुख मत करना। मुझसे घृणा भी मत करना। मैं घृणा की नहीं, दया की पात्री हूँ। जान-बूझ कर, इच्छा-पूर्वक मैं धर्म त्यागिनी नहीं हुई हूँ। धर्म ने, समाजने, समाज के जिम्मेदार आदमियों ने, मुझे वाध्य किया, विवश किया, उत्पीड़ित किया। मैं लाचार थी। कर ही क्या सकती थी? किन्तु, आज—मरते समय—मेरे हृदय में उस समाज के प्रति द्वेष नहीं रह गया है। मैं उसके सारे अपराध भूल गयी हूँ। उसे भी मेरे प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। और क्या!"

अधिक बोलने के कारण जेनी के घाव से बहुत रक्त गिरने लगा। देखते ही देखते, शान्त भाव से उसने सदा के लिए आँखें मूँद लीं। उसका यह भीषण अन्त देखकर सब लोग रो

पड़े। विन्दु और कुमुदिनी की आँखों के प्रवाह ने, अभागिनी जोना के सारे अपराध बहा दिये।

* * *

जोना की इच्छा के अनुसार उसका शव-दाह किया गया। वसन्त ने उसे आग दिया। उस समय वह निर्विकार हो रहा था। न रोता था, न हँसता। उसके मन में न सुख था, न दुख। वह उस समय चैतन्य और उन्माद की मध्यावस्था में था, उद्भ्रान्त हो रहा था।

३५

विवाह

जोना की मृत्यु के बाद से वसन्त बड़ा खिन्न रहने लगा। न उसे पढ़ना अच्छा लगता, न कोई काम करना। चुपचाप बैठा रहता। कभी पहाड़ों पर चढ़ जाता और आधी-आधी रात तक वहीं पड़ा रह जाता। जब, बंसी या और कोई जाकर उसे पुकारता, बुला लाता, तो, बिना कुछ बोले-चाले वह लौट आता था। उसकी चञ्चलता नष्ट हो गयी थी, उसकी खुशी खो गयी थी, उसका आनन्द अन्तर्हित हो गया था। वह विषाद की एक प्रतिमा बन गया था, जिसके जीवन में केवल निराशा और अवसाद होता है। बोलता-चालता लोगों से कम और अपने को छिपाता बहुत ज्यादा था। लोगों के बीच में बैठना उसने छोड़ दिया था। अच्छे बुरे का ज्ञान उसे रह ही न गया था। नहाता तो कभी दिनभर नहाता ही रह जाता, कभी हफ्तों शरीर पर के कपड़े ही न उतरते थे। जब वे बहुत गन्दे हो जाते और कोई टोक देता, तो, उन्हें बदल लेता था। वह विक्षिप्त-सा हो गया था। उसकी आँखों में

दीनता आ गयी थी, वाणी के साथ मिलकर क्रन्दन एकाकार हो गया था।

कुमुदिनी वसन्त की इस दशा से बहुत चिन्तित हुई। उसने एक दिन अमरनाथ के पास जाकर यह सब कहा। अमरनाथ स्वयं उसके लिए दुखी थे; लेकिन, करते क्या! बात उनके वश की न थी। इस बीमारी का वे क्या इलाज करते? बोले—"अभी ताज़ी घटना है, वसन्त के कोमल मनपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा है। थोड़े दिनों में आपही सब ठीक हो जायगा। तुम भी उसे अपने पास बैठा कर जब तब बातचीत किया करो, समझाया करो, उसे बहलाने की चेष्टा किया करो।"

अमरनाथ की बात कुमुदिनी के ध्यान में आ गयी। उसने कहा—"ठीक है। ऐसा ही करूँगी।"

तब से कुमुदिनी बीच बीच में वसन्त को बुलाकर अपने पास बैठाती और अनेक प्रकार की बातें करके उसे बहलाने की चेष्टा करती थी। अनेक बातें वह सुनता-समझता और अनेक बातों को सुनकर भी अनसुनी कर देता। पागलों की तरह कुमुदिनी की ओर ताकता रह जाता। कभी कभी, वह दृष्टि इतनी तीखी, इतनी मर्मभेदिनी होती कि कुमुदिनी सह न सकती, घबरा जाती, सिहर उठती थी।

कभी—किसी अँधेरी रात में—वसन्त अपने आप, अकेले चिल्ला उठता, अट्टहास कर उठता। घर वाले डर जाते। सोचते—"वसन्त एकदम पागल हो हो जायगा क्या?"

कुछ दिनों बाद, उन्माद के लक्षण दूर होने लगे। वसन्त अब गंभीर रहने लगा। गीता और योग-दर्शन की किताबें पढ़ने लगा। सोचता,किताबें पढ़ता और उन्हीं में तन्मय रहता था। संसार की उसे और कोई खबर न थी। इसी तरह कई दिन बीत गये। अमरनाथ शिमला छोड़ने की तैयारी करने लगे। वसन्त ने भी यह बात सुनी।

शिमला छोड़ने के पहले वह एक बार विलियम के यहाँ गया। विलियम से उसकी खूब बातें हुईं। दोनों मित्र जेनी की स्मृति में बड़ी देर तक रोते रहे। उनकी आँखों का जल सूख चुका था, हृदय रो रहे थे।

चलते समय वसन्त ने जेनी की एक तस्वीर माँगी। वह तस्वीर ईसाई जेनी की थी, घुटना टेककर प्रार्थना करते समय की। उसे लेकर वसन्त ने कपड़ों में छिपा लिया। बोला—"मि० विलि,अब जन्म भर के लिए विदा होता हूँ। हमलोगों की यह मित्रता बड़ी मँहगी रही।"

विलियम की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा—"सचमुच हो। मुझे भूल जाने की कोशिश कीजियेगा। मैं भी

वैसी कोशिश करता किन्तु, हाय! आपने मुझे आँखें देकर वह रास्ता बन्द कर दिया है।"

वसन्त ने कहा—"मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ।"

वह विलियम से विदा हुआ। विलियम देर तक उसीकी बात सोचता रहा।

* * *

प्रयाग जाने के एकदिन पहले वसन्त अकेले में कुमुदिनी से मिला। बोला—"भाभी! एकबार आपने मुझसे ब्याह करने की बात कही थी। आज वही बात मैं आपसे कहता हूँ। आप मुझे आज्ञा दें!"

आश्चर्य से कुमुदिनी वसन्त का मुँह ताकने लगी—"वसन्त को क्या हो गया है? यह क्या सच्ची बात कहता है?"

वसन्त ने कहा—"देखती क्या हैं भाभी, मैं सच्ची बात कह रहा हूँ। आपको विश्वास नहीं होता क्या?"

"विश्वास क्यों न होगा, वसन्त! प्रयाग चलो। वहीं सब हो जायगा।"

कुमुदिनी ने यह बात अमरनाथ से कही। अमरनाथ बोले—"इस अवस्था में क्या उससे बिन्दु का ब्याह किया जा सकता है?"

विन्दु के कानों में भी यह बात पड़ी। कुमुदिनी ने अभि-
ााय भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

उसने अपनी उदास आँखें नीची कर लीं; कुछ उत्तर न
देया! उन आँखों में आत्म-समर्पण का भाव था; मानो, वे
कह रही हों—"मैं हर हालत में उन्हीं की हूँ।"
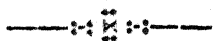
शेष

प्रयाग आने पर—अमरनाथ की इच्छा न रहने पर भी—बिन्दु से वसन्त का ब्याह हो गया। उस ब्याह में न उत्साह था, न शोर-गुल। चुपचाप, एक दिन दो-चार आदमियों की उपस्थिति में, वसन्तने बिन्दु का पाणिग्रहण कर लिया।

बिन्दु को कोई आशा न थी। वह हर हालत में वसन्तकी थी, उसने वसन्त को आत्म समर्पण किया था; इसीसे उसे ब्याह करने में कोई एतराज़ न था।

जेनी अपनी आग में सुलगकर आप ही बुझ गयी थी; वसन्त का हृदय पतझड़ हो गया था। बिन्दु के दुःख से दुखी होकर ही उसने उससे ब्याह कर लिया था। लेकिन, उसके हृदय में शान्ति नहीं थी।

दुनियाँ में पतझड़ वसन्त के आने की सूचना देता है! पर वसन्तके हृदय का यह पतझड़ चिरकाल के लिये था। वहाँ न वसन्त की बयार थी, न आशा की मंजरी निकलने का विश्वास ही। उसके हृदय की कली सूख चुकी थी और उसके यौवन के वसन्त-ऋतु में ही पतझड़ आ गया था। उसे न कोई आशा

थी, न आकांक्षा ! जेनी के साथ ही वह अपना सर्वस्व खो चुका था !

विलियम और बिन्दु, दोनों का जीवन निराशा विषाद और क्रन्दन का अमर इतिहास था।

बिन्दु को प्रेमका प्रतिदान कभी नहीं मिला। वह जीवन में हमेशा ही ठगी गयी, धोखा खाती रही। अब वह अपनी सारी आशा-आकांक्षाएँ खो चुकी थी, निराश हो चुकी थी !

विलियम ने जीवन में दो बार प्रेम किया और दोनों बार ही उसे धोखा खाना पड़ा। जहाँ जहाँ वह शीतल-सलिल की आशा करके गया, वहीं वहीं उसे जलती हुई बालुका-राशि की मृग-मरीचिका मिली।

बंसी का संसार से कुछ विशेष नाता नहीं था। अमरनाथ और कमुदिनी के हृदय में—बिन्दु के लिए जीवनभर एक दु:ख बना रहा। उन लोगों के जीवन का सुख, बिन्दु के दुर्भाग्य की तरह ही, दिन का सपना बन गया, खो गया।

* बस *
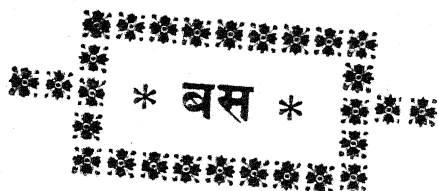
मुक्त-लिखित

नवीन-मौलिक-उपन्यास

१—पतझड़

२—भूल

३—चिता-भस्म

४—विसर्जन

५—बेलपत्र (कहानी-संग्रह)

——:-:०:-:——